श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र) का मुखपत्र
कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४
सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल

आत्मधर्म [४१४]

[हिन्दी, गुजराती, मराठी, तामिल तथा कन्नड़ — इन पाँच भाषाओं में प्रकाशित
जैन समाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक]

संपादक :
डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल

प्रबंध संपादक :
अखिल बंसल

कार्यालय :
श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)

शुल्क :
आजीवन : १०१ रुपये
वार्षिक : ६ रुपये
एक प्रति : ५० पैसे

मुद्रक :
सोहनलाल जैन
जयपुर प्रिण्टर्स, जयपुर

क्या

१ जो-जो देखी वीतराग ने.....
२ क्रमबद्धपर्याय : कुछ प्रश्नोत्तर
३ वास्तव में भगवान की.....
[समयसार प्रवचन]
४ और कैसा है यह आत्मा ?
[नियमसार प्रवचन]
५ द्रव्यसंग्रह प्रवचन
६ ज्ञान-गोष्ठी
७ समाचार दर्शन
८ पाठकों के पत्र

"Events do not happen, they already exist and are seen on the time-machine."
- Einstein

घटनाएँ घटती नहीं हैं; वे पहले से ही विद्यमान हैं, तथा कालचक्रपर देखी जाती हैं।
—आइन्सटीन

आ त्म ध र्म

शाश्वत सुख का, आत्म शान्ति का, प्रगट करे जो मर्म।
समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥

वर्ष : ३५ [४१४] अंक : ६

जो-जो देखी वीतराग ने, सो-सो होसी वीरा रे।
बिन देख्यो होसी नहिं क्योंही, काहे होत अधीरा रे॥
जो-जो देखी० ॥१॥

समयो एक बढ़ै नहीं घटसी, जो सुख-दुःख की पीरा रे।
तू क्यों सोच करै मन मूरख, होय वज्र ज्यों हीरा रे॥
जो-जो देखी० ॥२॥

लगै न तीर कमान बान कहुँ, मार सकै नहीं मीरा रे।
तू सम्हारि पौरुष बल अपनो, सुख अनंत तो तीरा रे॥
जो-जो देखी० ॥३॥

निश्चय ध्यान धरहु वा प्रभु को, जो टारे भव भीरा रे।
'भैया' चेत धरम निज अपनो, जो तारे भव नीरा रे॥
जो-जो देखी० ॥४॥

सम्पादकीय

क्रमबद्धपर्याय | कुछ प्रश्नोत्तर

[गतांक से आगे]

(७) प्रश्न – जब हम अपनी पर्याय को भी नहीं बदल सकते तो फिर हमारे परिणमन के कर्ता भी हम क्या रहे ?

उत्तर – 'हम अपनी पर्याय को भी नहीं बदल सकते'—जब यह कहा जाता है तब उसका आशय यह होता है कि हम उसके निश्चित क्रम में कोई फेर-बदल नहीं कर सकते, यह नहीं होता कि उसके परिणमन के कर्ता भी हम नहीं हैं। छठवें प्रश्न के उत्तर में जिन छह शक्तियों की चर्चा की गई है, वे द्रव्य की स्वशक्तियाँ ही तो हैं, उनके कारण ही तो पर्याय स्वसमय में होती है। इसलिए अपनी पर्याय का कर्ता तो द्रव्य है ही।

जिनवाणी में एक अपेक्षा यह भी आती है—जिसमें पर्याय का कर्ता पर्याय को कहा जाता है, द्रव्य को नहीं। त्रिकाली उपादान की अपेक्षा पर्याय का कर्ता वह द्रव्य या गुण कहा जाता है, जिसकी वह पर्याय होती है; और क्षणिक उपादान की अपेक्षा तत्समय की योग्यता ही कार्य की नियामक होने से पर्याय को ही पर्याय का कर्ता कहा जाता है। यह पर्याय की स्वतंत्रता की चरम परिणति है, जो उसके सहज क्रमनियमित परिणमन को सिद्ध करती है।

परिणमनशीलता द्रव्य का सहज स्वभाव है और स्वभाव सदा परनिरपेक्ष होता है। अत: प्रत्येक द्रव्य को अपने परिणमन में पर की रंचमात्र भी अपेक्षा नहीं है। कोई भी द्रव्य एक समय को भी परिणमन से खाली नहीं रहता। यदि एकसमय भी परिणमन रुक जाए तो द्रव्य का द्रव्यत्व ही कायम न रहे। द्रवणशीलता—परिणमनशीलता का नाम ही द्रव्य है।

परिणमन-स्वभाव के अभाव में स्वभाववान द्रव्य की सत्ता के अभाव का प्रसंग भी उपस्थित हो जाएगा। जिसप्रकार शरीर में जो खून दौड़ता है, यदि वह दौड़ना बंद कर दे तो हृदयगति रुक जाने से मनुष्य की मौत का प्रसंग उपस्थित हो जाता है; उसीप्रकार यदि किसी

द्रव्य का एक समय को भी परिणमन रुक जाये तो उसकी मौत (अभाव) का प्रसंग उपस्थित होगा। और द्रव्य के अभाव के साथ-साथ विश्व के अभाव का भी प्रसंग आयेगा, क्योंकि छह द्रव्यों के समूह का नाम ही तो विश्व है।

जिसप्रकार खून निरंतर दौड़ता है फिर भी थकता नहीं, क्योंकि दौड़ना ही उसका जीवन है, निरंतर गति करने में ही उसकी सुगति है; उसीप्रकार द्रव्य को निरंतर परिणमन में कोई कठिनाई नहीं आती, निरंतर परिणमन ही उसका जीवन है।

उसके लिये यह कोई समस्या नहीं है कि प्रतिसमय नई-नई पर्यायें कहाँ से लायेंगे? वे स्वभाव में से सहज आती हैं, उन्हें कहीं से लाना नहीं पड़ता; वे परमुखापेक्षी नहीं हैं। यदि उन्हें अन्य की अपेक्षा हो तो द्रव्य पराधीन हो जावे या परिणमन उसका स्वभाव न रहे, क्योंकि स्वभाव को पर की अपेक्षा नहीं होती। जिसमें पर की अपेक्षा हो वह स्वभाव कैसा?

इसीलिए तो कहा है :-

'यह जगत स्वयं परिणमनशील, केवलज्ञानी ने गाया है।'

अथवा

'होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जग का करता क्या काम।'

(८) प्रश्न :- जब हम पर का कुछ कर ही नहीं सकते तो फिर हमारी स्वतंत्रता ही क्या रही?

उत्तर :- क्या पर में कुछ करने का नाम ही स्वतंत्रता है? जब यह कहा जाता है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ भी नहीं कर सकता तब उसका अर्थ आप मात्र इतना ही क्यों लेते हैं कि आप दूसरे का कुछ नहीं कर सकते, यह क्यों नहीं लेते कि आपका भी तो कोई कुछ नहीं कर सकता?

जब आप यह विचार करेंगे तो आपको स्वतंत्रता अनुभव होगी कि देखो मेरा कोई भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

जब किसी राज्य के संबंध में यह कहा जाये कि इस राज्य में कोई किसी को लूट नहीं सकताव, मार नहीं सकता, दु:खी नहीं कर सकता; तो यह कोई नहीं कहता कि यह कैसा खोटा राज्य है कि इसमें कोई किसी को लूट नहीं सकता, मार नहीं सकता, दु:खी नहीं कर सकता; बल्कि यह कहता है कि यह कितना अच्छा राज्य है।

जिसप्रकार ऐसा तो कोई हत्यारा या चोर ही कह सकता है कि यह कैसा राज्य है कि इसमें मारने या लूटने की भी स्वतंत्रता नहीं है; उसीप्रकार ऐसा तो कोई कर्तृत्व के अहंकार से ग्रस्त अज्ञानी ही कह सकता है कि यह कैसा वस्तुस्वरूप है कि जिसमें हम पर का कुछ कर ही नहीं सकते।

क्रमबद्धपर्याय की बात तो अनंत स्वतंत्रता की सूचक है। इसको बुद्धिपूर्वक हृदय से स्वीकार करनेवाले को तो अनंत स्वतंत्रता की प्रतीति होती है। यह जानकर किसको प्रसन्नता नहीं होगी कि हमारा सुख-दुःख, जीवन-मरण, भला-बुरा सब-कुछ हमारे अधिकार में है, उसमें किसी का कुछ भी हस्तक्षेप नहीं है।

यह जानकर भी जिसको प्रसन्नता न हो, समझना चाहिए या तो वह गुलामवृत्ति का व्यक्ति है या फिर अन्यों को गुलाम बनाकर रखने की वृत्ति वाला है।

'क्रमबद्धपर्याय' में वस्तु की अनंत स्वतंत्रता की घोषणा है।

(९) प्रश्न :- ज्ञानी भी तो यह कहते देखे जाते हैं कि मैंने ऐसा किया, वैसा किया ?

उत्तर :- हाँ! यह बात सही है कि ज्ञानी के जीवन में भी ऐसा वचन-व्यवहार देखा जाता है, पर उसकी मान्यता ऐसी नहीं होती। मान्यता तो उसकी वस्तुस्वरूप के अनुकूल ही होती है, क्योंकि ऐसा कहना तो व्यवहार है और मानना मिथ्यात्व है।

जिसप्रकार सम्यग्दृष्टि ज्ञानी आत्मा स्त्री-पुत्र, मकान, जायदाद आदि संयोगी पदार्थों को अपना कहता देखा जाता है कि यह मेरी स्त्री है, ये मेरे पुत्र हैं, यह मेरा मकान है-पर मानता यही है कि ये कुछ भी मेरे नहीं; उसीप्रकार पर में करने आदि का वचन-व्यवहार भी उनके देखा जाता है। कथनमात्र से वे मिथ्यादृष्टि नहीं हो जाते, क्योंकि मिथ्यात्व तो मान्यता संबंधी दोष है।

इस संदर्भ में पंडितप्रवर टोडरमलजी के विचार दृष्टव्य हैं:-

''जैसे कोई गुमाश्ता सेठ के कार्य में प्रवर्तता है, उस कार्य को अपना भी कहता है, हर्ष-विषाद को भी प्राप्त होता है, उस कार्य में प्रवर्तते हुए अपनी और सेठ की जुदाई का विचार नहीं करता; परंतु अंतरंग श्रद्धान ऐसा है कि यह मेरा कार्य नहीं है। ऐसा कार्य करता गुमाश्ता साहूकार है। यदि वह सेठ के धन को चुराकर अपना माने तो गुमाश्ता चोर होय। उसीप्रकार

कर्मोदयजनित शुभाशुभरूप कार्य को करता हुआ तद्रूप परिणमित हो; तथापि अंतरंग में ऐसा श्रद्धान है कि यह कार्य मेरा नहीं है। यदि शरीराश्रित व्रत-संयम को भी अपना माने तो मिथ्यादृष्टि होय।''[१]

(१०) प्रश्न - इसका अर्थ तो यह हुआ कि ज्ञानी की मान्यता और कथन में अंतर होता है ?

उत्तर - हाँ, अवश्य होता है; पर इसका कारण ज्ञानी के हृदय की अपवित्रता नहीं, अपितु वस्तु की स्थिति है। क्योंकि ज्ञानी की मान्यता तो वस्तुस्वरूप के अनुसार होती है और वचन-व्यवहार लोकप्रचलित व्यवहार के अनुसार होता है।

वस्तुस्वरूप की अपेक्षा विचार करें तो स्त्री-पुत्रादि, मकान-जायदाद किसी के नहीं हैं, फिर भी लोक में इन्हें अपने कहने का व्यवहार प्रचलित है। मान्यता का संबंध सीधा वस्तुस्वरूप से है और वाणी का व्यवहार लौकिकजनों से होता है। अतः ज्ञानी की मान्यता तो वस्तुस्वरूप के अनुसार होती है और वचन-व्यवहार लोक-व्यवहार के अनुसार होता है।

आचार्य अमृतचंद्र समयसार की आत्मख्याति टीका के आरंभ में लिखते हैं कि 'इस टीका के करने से मेरी परिणति परमविशुद्धि को प्राप्त हो।'[२] और टीका के अंत में लिखते हैं कि 'इस टीका के बनाने में स्वरूपगुप्त अमृतचंद्र आचार्य का कुछ भी कर्तृत्व (कार्य) नहीं है।'[३]

इसीप्रकार की चर्चा पंडित टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचंद्रिका की पीठिका एवं प्रशस्ति में की है। पीठिका में तो टीका लिखने की चर्चा करते हैं एवं लिखने के प्रयोजन आदि को विस्तार से स्पष्ट करते हैं। तथा अंत में प्रशस्ति में लिखते हैं:-

वचनादिक लिखनादिक क्रिया, वर्णादिक अरु इंद्रिय हिया।
ये सब हैं पुद्गल के खेल, इनमें नाहिं हमारो मेल॥
रागादिक वचनादिक घनां, इनके कारण कारिजपनां।
तातैं भिन्न न देख्यो कोय, बिनु विवेक जग अंधा होय॥

---

१. रहस्यपूर्ण चिट्ठी (मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ ३४२)

२. परपरिणतिहेतोर्मोहनाम्नोऽनुभावा-दविरतमनुभाव्यव्याप्तिकल्माषितायाः।
मम परमविशुद्धिः शुद्धचिन्मात्रमूर्तेर्भवतु समयसारव्याख्ययैवानुभूतैः॥३॥

३. स्वशक्तिसंसूचितवस्तुतत्त्वव्याख्या कृतेयं समयस्य शब्दैः। स्वरूपगुप्तस्य न किंचिदस्ति कर्तव्यमेवामृतचंद्रसूरेः॥२७८॥

ज्ञान राग तो मेरौ मिल्यौ, लिखनौ करनौ तनु को मिल्यौ।
कागज मसि अक्षर आकार, लिखिया अर्थ प्रकाशन हार॥
ऐसौ पुस्तक भयो महान, जातैं जानैं अर्थ सुजान।
यद्यपि यहु पुद्गल कौ खंद, है तथापि श्रुतज्ञान निबंध॥[१]

आचार्य अमृतचंद्र और पंडित टोडरमलजी—दोनों ही ज्ञानी आत्मा थे। उनके उक्त कथनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसमें कोई छल नहीं है। जब तक वचन-व्यवहार है, तब तक मान्यता और वाणी का यह अंतर तो रहेगा ही।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि भरतादि चक्रवर्ती भी छहखंड की विभूति को अपनी कहते ही थे, पर मानते नहीं थे। यह चौथे, पाँचवें और छठवें गुणस्थान की भूमिका में पाया जानेवाला पर्यायगत सत्य है-इसे जानना भी आवश्यक है। इस सत्य की स्वीकृति बिना इसप्रकार की शंका बनी ही रहेगी।

(११) प्रश्न :- जब सुख-दुःख, जीवन-मरण सब कुछ नियत हैं, स्वकाल में ही होते हैं, तो फिर अकालमृत्यु नाम की तो चीज़ ही नहीं रही; जबकि शास्त्रों में अकालमृत्यु की चर्चा आती है, तत्त्वार्थसूत्र के दूसरे अध्याय के अंतिम सूत्र में अकालमृत्यु की बात साफ-साफ लिखी है ?

उत्तर :- विषभक्षणादि द्वारा होनेवाली मृत्यु को अकालमृत्यु कहा जाता है। यह कथन आयु की उदीरणा या अपकर्षण की अपेक्षा किया जाता है; अथवा अपेक्षित आयु से पहले होनेवाले मरण की अपेक्षा यह कथन होता है, वस्तुस्थिति की अपेक्षा नहीं; क्योंकि केवली भगवान के ज्ञान में तो जिसकाल उसका मरण होना ज्ञात हुआ था, उसी काल में हुआ है; अतः वह भी स्वकालमरण ही है, अकालमरण नहीं।

तत्त्वार्थसूत्र में भी आयुकर्म की स्थिति के अपकर्षण की बात ही कही गई है। तत्त्वार्थसूत्र के जिस सूत्र में उक्त चर्चा है, वह इसप्रकार है:-

"औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः॥[२]

---

१ मोक्षमार्गप्रकाशक, प्रस्तावना, पृष्ठ २१
२ अध्याय २, सूत्र ५३

उपपाद जन्मवाले देव और नारकी, चरमोत्तम देहवाले अर्थात् उसी भव से मोक्ष जानेवाले और असंख्यात वर्ष की आयुवाले भोगभूमियों की आयु अपवर्तन रहित होती है, अर्थात् उनकी आयु का उसी भव में अपकर्षण नहीं होता।

आयु दो प्रकार की होती है—(१) भुज्यमान आयु और (२) वध्यमान आयु।

जिस आयु को जीव वर्तमान में भोग रहा है, उसे भुज्यमान आयु कहते हैं और जो आयु बंध तो गई है, पर जिसका उपभोग अगले भव में होगा, उसे वध्यमान आयु कहते हैं।

वध्यमान आयु की स्थिति में तो सभी का अपकर्षण हो सकता है, पर भुज्यमान आयु का अपकर्षण उक्त सूत्र में कथित जीवों के नहीं होता है—यह बताना उक्त सूत्र का उद्देश्य है।

राजा श्रेणिक ने तैतीस सागर की नरकायु की स्थिति बाँधी थी और उसका अपकर्षण होकर चौरासी हजार वर्ष ही रह गई, पर यह पूर्व भव में ही हुआ; नरकायु का उपभोग आरंभ होने के बाद उसका अपकर्षण संभव नहीं है। जबकि उक्त सूत्र में कथित जीवों को छोड़कर अन्यजीवों की आयु का अपकर्षण उसी भव में भी हो जाता है।

यह संपूर्ण चर्चा आयु के अपकर्षण की है, इससे क्रमबद्धपर्याय की निश्चिता में कोई अंतर नहीं पड़ता।

जैसे जब हम किसी दुकानदार के पास खरीदा हुआ सामान पसंद न आने पर वापिस करने जाते हैं, तो वह पैकिटबंद सामान तो सभी वापिस कर लेता है, पर पैकिट खुल जाने पर कुछ सामान तो वापिस कर लेता है और कुछ नहीं करता है; उसीप्रकार जिस आयु का उपभोग आरंभ नहीं हुआ है, उसमें तो सभी में अपकर्षण संभव है, पर उपभोग आरंभ हो जाने पर उक्त सूत्र में कथित आयु का अपकर्षण संभव नहीं है, यही बात उक्त सूत्र में बताई गयी है। इससे काल की नियमितता में कोई अंतर नहीं आता और न ही अन्य समवायों की उपेक्षा ही होती है, क्योंकि आयु का अपकर्षण भी तो अन्य समवायों की सापेक्षता से होता है।

वस्तुतः यह कथन अकालमृत्यु का न होकर आयु के अपकर्षण का है।

इस संदर्भ में जैनेन्द्रसिद्धांतकोशकार श्री जिनेन्द्रवर्णी का (शांतिपथदर्शन, पृष्ठ १२३) निम्नलिखित कथन दृष्टव्य है:—

"पाँचवाँ प्रश्न है अकालमृत्यु संबंधी। समय से पहले विषभक्षण आदि से होनेवाली मृत्यु को 'अकालमृत्यु' कहते हैं। कर्मसिद्धांत के अंतर्गत पूर्वबद्ध कर्मों की स्थिति आदि के

घटने-बढ़ने को 'अपकर्षण' व 'उत्कर्षण' कहते हैं और प्रकृति के बदल जाने को 'संक्रमण' कहते हैं। समय से पहले कर्म को उदय में लाना 'उदीरणा' कहलाती है और समय से पहले उन्हें झाड़ देना 'निर्जरा' कहलाती है।

आगमकथित ये सब विषय नियति के बाधक हैं, ऐसी आशंका भी करनी योग्य नहीं क्योंकि उसका उत्तर तो वही उपरोक्त विकल्प है, जिसके आने पर तदनुरूप ही प्रवृत्ति स्वतः होती है। तीव्र क्रोध आने पर ही विषभक्षण आदि का कार्य होता है, उसके अभाव में नहीं। इसीप्रकार अपकर्षण, उदीरणा व निर्जरा आदि के संबंध में भी जानना। क्योंकि अकालमृत्यु का अर्थ आयुकर्म की उदीरणा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

अकाल तो केवल इसलिए कही जाती है कि जितनी आयु बँधी, उतनी स्थिति पूरी नहीं की। वास्तव में कोई भी कर्म ऐसा नहीं जिसकी स्थिति बन्ध के अनुसार ही उदय में आती हो। बुद्धिहीन सूक्ष्म प्राणियों में भी ये उत्कर्षण आदि बराबर हो रहे हैं। जैसा-जैसा विकल्प उस-उस समय आता है, वैसी-वैसी प्रवृत्ति ही उस-उस समय होती है, तत्फलस्वरूप वैसा-वैसा ही नवीन बंध व उत्कर्षण आदि होता है। उत्कर्षण आदि के परिणाम कोई और हों और बंध के कोई और—ऐसा नहीं है। एक समय के जिस एक परिणाम या प्रवृत्ति से बंध होता है, उसी से उसीसमय यथायोग्य उत्कर्षण, अपकर्षण आदि भी होते हैं; अतः इनसे नियति बाधित नहीं हो सकती।''

(१२) प्रश्न :- आप ऐसा क्यों कहते हैं कि केवली के ज्ञानानुसार प्रत्येक मृत्यु स्वकाल में ही होती है, क्योंकि इससे तो ऐसी ध्वनि निकलती है कि किसी अपेक्षा अकालमृत्यु भी होती होगी ?

उत्तर :- होती तो क्या है, कही अवश्य जाती है। अपकर्षण, उदीरणा आदि की अपेक्षा इसप्रकार का कथन होता है। इसे क्षयोपशम ज्ञान की अपेक्षा भी कह सकते हैं।

जैसे - एक घड़े में दस लीटर पानी है और उसमें एक छेद भी है, जिसमें से वह पानी एक घंटे में एक लीटर की रफ्तार से निकल रहा है।

यदि गणितज्ञ से पूछा जाए तो वह घड़ा कितने समय में खाली हो जावेगा तो वह अपने गणितानुसार दस घंटे ही बतायेगा जो कि सही ही है, पर यदि किसी भी भविष्यज्ञानी से पूछा जाए कि वह घड़ा कब तक खाली हो जावेगा तो वह काल भी बता सकता है कि पाँच घंटे में।

क्योंकि उसे यह भी पता है कि पाँच घंटे बाद एक बालक की ठोकर से यह घड़ा ढुलक जाएगा और पानी निकल जावेगा।

अब गणित की अपेक्षा उसे असमय में खाली होना कहा जाएगा और भविष्यज्ञानी अथवा वस्तुस्थिति की अपेक्षा यह कहा जाएगा कि उसकी नियति ही यह थी; अतः स्वसमय में अपनी होनहार के अनुसार उचित निमित्तपूर्वक ही सब-कुछ घटित हुआ है।

इसीप्रकार जैसे किसी अपराधी को दस वर्ष की सजा हुई है—जब उसने न्यायाधीश से, वकील से, जेलर से पूछा कि मैं जेल से कब छूटूँगा? तो सभी ने एक स्वर से यही उत्तर दिया कि दस वर्ष बाद। और इस कथन को झूठ भी नहीं कहा जा सकता है। पर जब किसी भी भविष्यज्ञानी से पूछा जाएगा तो वह यह भी कह सकता है कि पाँच वर्ष बाद, क्योंकि उसे पता है कि पाँच वर्ष बाद राजा के पुत्र का जन्म होगा और उसकी खुशी में सभी कैदी छोड़ दिये जावेंगे और यह भी छूट जावेगा।

न्यायाधीशादि का कथन फैसले में दी गई सजा के आधार पर है और भविष्यवक्ता का कथन वास्तविकता के आधार पर है, अतः वह वास्तविक है और न्यायाधीशादि का सापेक्ष।

उसीप्रकार किसी जीव ने आयुकर्म की स्थिति अस्सी वर्ष की बाँधी है और चालीस वर्ष की उम्र में उसका अपकर्षण होना है या उसे उदीरणा होकर खिर जाना है। बीस वर्ष की उम्र में उसने अवधिज्ञानी से जिसका कि भविष्य का ज्ञान दस वर्ष से अधिक नहीं है, पूछा कि इसका मरण कब होगा? उसने अपने अवधिज्ञान से उसकी आयु की स्थिति जानकर बताया कि अस्सी वर्ष की उम्र में। पर जब केवलज्ञानी से पूछा तो उन्होंने बताया चालीस वर्ष की उम्र में; तो हमें दोनों में से कोई एक झूठा लगेगा। पर ये कथन झूठे नहीं, किंतु सापेक्ष कथन होंगे।

अवधिज्ञानरूप क्षयोपशमज्ञान की अपेक्षा उसे हम अकालमृत्यु कहेंगे और केवलज्ञान की अपेक्षा स्वकाल में ही मरण हुआ कहा जायेगा।

अथवा स्वास्थ्य आदि देखकर हम अपेक्षा तो यह रखते हैं कि यह आदमी अस्सी वर्ष जियेगा, पर विषादिभक्षण से जब वह चालीस वर्ष की उम्र में ही मर जाता है तो कह देते हैं—असमय में मरण हो गया है। हमारे इस ज्ञान का क्या आधार है कि उसे चालीस वर्ष से अधिक जीना था? बिना इस ज्ञान के उसे अकाल कहना कथनमात्र के अतिरिक्त और क्या हो सकता है?

उक्त कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि मरण तो जब होना था तभी हुआ है, उसमें कोई फेरफार नहीं हुआ। जो कुछ भी अंतर आया है, वह मात्र कथन में आया है।

जिन शब्दों में 'अ' लगाकर निषेधवाचक बनाया जाता है, उनमें 'अकाल' भी एक शब्द है, जिसका अर्थ समय से पहिले न होकर काल से भिन्न कोई अन्य कारण होता है। क्योंकि इस प्रकरण में 'काल' शब्द का प्रयोग एक कारण के अर्थ में हुआ है।

मृत्युरूपी कार्य होने में अनेक कारण होते हैं, उनमें काल भी एक कारण है। कथन में अनेक कारण तो एक साथ आ नहीं सकते, अत: किसी एक कारण को मुख्य करके कथन होता है। जब काल को मुख्य करके कथन होता है, तब उसे कालमृत्यु कहते हैं और जब काल मुख्यकारणरूप से दिखाई न दे और काल से भिन्न विष भक्षणादि कोई अन्य कारण मुख्य दिखाई दें तो उसे अकालमरण कहेंगे। अकालमृत्यु की परिभाषा में कहा भी गया है कि विष भक्षणादि के द्वारा होनेवाली मृत्यु को अकालमृत्यु कहते हैं।

इससे तो यही निष्कर्ष निकलता है कि 'अकाल' शब्द असमय का सूचक न होकर, काल के अतिरिक्त अन्य कारणों का द्योतक है।

जब हम किसी के मरने पर पूछते हैं कि कल तक तो वह ठीक था, आखिर उसे अचानक हुआ क्या? तो यही उत्तर मिलता है कि कुछ नहीं, समझ लो उसका काल ही आ गया था। जिसका काल आ जाये, उसे कौन बचा सकता है? फिर कोई कारण का पता चलता तो उसका इलाज भी किया जाता।

तथा यदि कोई विषभक्षण, एक्सीडेंट आदि अन्य कारण दिखाई देता है तो कोई यह नहीं कहता कि उनका काल ही आ गया था, अपितु यह कहा जाता है कि घर से तो अच्छे चले थे, पर एक्सीडेंट हो गया या किसी ने जहर दे दिया अथवा और जो कुछ हुआ होता है, कहा जाता है। साथ में यह भी कहा जाता है कि भाई वे तो बेचारे अकालमौत के शिकार हो गये।

इसप्रकार अकालमृत्यु असमय की सूचक न होकर काल के अतिरिक्त मुख्यरूप से अन्य कारणों से होनेवाली मृत्यु की सूचक है।

इसप्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि अकालमृत्यु के कथन से 'क्रमबद्धपर्याय' की मान्यता में कोई अंतर नहीं पड़ता है। [क्रमश:]

वास्तव में भगवान की स्तुति क्या है?

परमपूज्य आचार्य कुंदकुंद के सर्वोत्तम ग्रंथराज 'समयसार' की बत्तीसवीं गाथा पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का सार यहाँ दिया जा रहा है। मूलगाथा इसप्रकार है:-

जो मोहं तु जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणइ आदं।
तं जिदमोहं साहुं परमट्ठवियाणया विंति॥३२॥

जो मुनि मोह को जीतकर अपने आत्मा को ज्ञानस्वभाव के द्वारा अन्य द्रव्यों से अधिक (भिन्न) जानता है; उस मुनि को परमार्थ से ज्ञाता जितमोह कहते हैं।

इकतीसवीं गाथा में ज्ञेय-ज्ञायकसंकरदोष को दूर करके होनेवाली परमार्थस्तुति का वर्णन किया थ। द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय और इंद्रियों के विषयभूत पदार्थों से भिन्न ज्ञानानंदस्वभावी शुद्धात्मा का अनुभव करनेवाले चौथे से सातवें गुणस्थानवर्ती ज्ञानी ही ऐसी परमार्थस्तुति करते हैं।

बत्तीसवीं गाथा में भाव्य-भावकसंकरदोष का अभाव करके होनेवाली परमार्थस्तुति का वर्णन करते हैं। अतीन्द्रियज्ञानस्वरूप ध्रुव आत्मतत्त्व का अनुभव करनेवाले ज्ञानी जीव की रागादि में एकत्वबुद्धि टूट गई है, परंतु अभी अस्थिरता बाकी है, इसलिए भूमिकानुसार राग होता है। इस राग को भी जीतने के लिए उपशमश्रेणी में चढ़नेवाले आठवें से ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती मुनिराज ऐसी परमार्थस्तुति करते हैं।

ज्ञानी को रागादि से भिन्न आत्मा का अनुभव है ही, परंतु अब विशेष लीनतारूप चारित्र द्वारा शेष रागांश को दूर करने के लिए वे उपशमश्रेणी में आरोहण करते हुए भाव्य-भावसंकरदोष के अभावरूप मध्यमकक्षा वाली परमार्थस्तुति करते हैं।

यहाँ तीन प्रकार से परमार्थस्तुति का वर्णन किया गया है:-

(१) ज्ञेय-ज्ञायकसंकरदोष के अभावरूप जघन्यस्तुति, जो चौथे से सातवें गुणस्थानवर्ती जीवों को होती है।

(२) भाव्य-भावकसंकरदोष के उपशमरूप मध्यमस्तुति, जो उपशमश्रेणी वाले आठवें से ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती जीवों को होती है।

(३) भाव्य-भावकभाव के अभावरूप उत्कृष्टस्तुति जो क्षपकश्रेणी वाले आठवें से बारहवें गुणस्थानवर्ती जीवों को होती है।

तेरहवें गुणस्थान में सर्वज्ञ दशा प्रगट होती है जो उक्त तीनों परमार्थस्तुति का फल है।

टीकाकार आचार्य अमृतचंद्रदेव सर्वप्रथम भाव्य-भावकसंकरदोष का स्वरूप बताते हैं।

सम्यग्दर्शन होने के बाद कोई भी जीव तुरंत ही सर्वथा वीतराग नहीं हो जाता। अभी स्वरूप में पूर्ण स्थिरता न होने से भूमिकानुसार राग आता है। मुनिराज को भी अस्थिरता के कारण पंच महाव्रतादि का शुभराग आता है और उसे भी दूर करने के लिए स्वरूप में विशेष लीनता करते हैं, परंतु उस लीनता में भी कमजोरी रह जाने से उपशश्रमश्रेणी में आरोहण करते हैं। अत: उनके राग का संपूर्ण अभाव न होकर मात्र उपशमन होता है।

देखो! यहाँ मुनिराज की भूमिका में होनेवाले राग को मोह कहा है। मोह अर्थात् स्वरूप की असावधानी। आत्मा की सावधानी से चूककर परोन्मुखीवृत्ति होने से ही मोह होता है। मोह पर से नहीं, किंतु परोन्मुखी वृत्ति होने से अर्थात् उपयोग को परसम्मुख झुकाने से होता है।

यहाँ आचार्यदेव ने मोहकर्म को भावकपने से प्रगट होनेवाला कहा है। मोहकर्म फल देने की सामर्थ्य से उदयरूप होकर भावकपने से प्रगट होता है। इस जीव ने अनादिकाल से स्वयं को ज्ञानानंदस्वभावरूप न मानकर शरीर अथवा विकाररूप माना है। इस भूल का निमित्त पाकर मोहकर्मरूप जड़-रजकणों का आत्मा के प्रदेशों के साथ एकक्षेत्रावगाहरूप बंध होता है। और अपनी स्थिति पूर्ण होने पर उन रजकणों में विपाक आता है, तब वह मोहकर्म भावकरूप से प्रगट होता है।

मोहकर्म भावक है और उसका अनुसरण करके आत्मा में रागादिभावों की उत्पत्ति होना भाव्य है। रागादिभाव आत्मा का अनुसरण करके उत्पन्न नहीं होते और मोह नामक कर्म से भी उत्पन्न नहीं होते। आत्मा में मोहकर्म का निमित्त पाकर रागादिरूप परिणमने की योग्यता है, इसलिए रागादि को मोहकर्म का भाव्य कहा जाता है। रागरूप परिणमित होने की योग्यता

जीव की स्वयं की है, उसमें चारित्रमोह का उदय निमित्त मात्र है। कर्म का उदय होने पर जीव स्वयं राग-द्वेष करता है।

मोहकर्मरूप भावक का अनुसरण करके रागादिरूप भाव्यपरिणाम का उत्पन्न होना भाव्य-भावकसंकरदोष है। रागादि में अकर्तृत्व बुद्धि होने पर भी ज्ञानी की पर्याय में रागादिरूप भाव्य-भावकसंकरदोष उत्पन्न होता है। ज्ञानी को भी चारित्रदशा में कर्मोदय और राग के साथ निमित्त-नैमित्तिक संबंध होता है। यह संबंध कर्म के कारण नहीं, किंतु जीव की उससमय की योग्यता से होता है। यदि निमित्त-नैमित्तिक संबंध न हो तो पूर्ण वीतरागता होनी चाहिए। परंतु अभी पूर्ण वीतरागता नहीं हुई, अभी रागादिरूप परिणमने की योग्यतारूप भाव्य तथा मोहकर्म के उदयरूप भावक का निमित्त-नैमित्तिक संबंध विद्यमान है।

भाव्य-भावकसंकरदोष कहकर आचार्यदेव प्रथम तो यह ज्ञान कराते हैं कि अपनी पर्याय की योग्यता के कारण राग है और उसमें कर्म का उदय निमित्तमात्र है; आत्मा में स्थिरतापूर्वक भाव्य-भावकसंकरदोष को दूर करने का प्रयत्न करना मध्यमकक्षा की परमार्थस्तुति है।

'आत्मख्याति' के तीसरे कलश में भी आचार्यदेव अपनी परिणति में शुद्धि प्रगट होने की भावना भाते हैं। वे कहते हैं कि अभी मेरी परिणति कलुषित है। द्रव्यस्वभाव की अपेक्षा तो मैं शुद्ध चैतन्यमूर्ति हूँ, परंतु वर्तमान में मेरी परिणति में मोहकर्मरूपी अनुभावक से अनुभाव्यरूप कलुषता विद्यमान है। इस समयसार ग्रंथ की व्याख्या से मेरी परिणति में परमविशुद्धि प्रगट हो।

भाव्य-भावकसंकरदोष का स्वरूप बताने के बाद आचार्यदेव उसे दूर करने की विधि बताते हैं।

भावक का अनुसरण करनेवाले भाव्य को भेदज्ञान के बल द्वारा दूर से ही अलग करके, बलपूर्वक मोह का तिरस्कार करके, भाव्य-भावकसंकरदोष दूर होता है। भेदज्ञान के बल से भाव्यरूप रागादि को दूर से ही अलग किया अर्थात् वर्तमान पर्याय में रागादि उत्पन्न नहीं हुए। पहले मोहकर्म के उदयरूप भावक की ओर झुकाव था, अब स्वभावसम्मुख झुकाव हुआ तो रागादिरूप भाव्य उत्पन्न नहीं हुए—यही रागादि को दूर से ही अलग करना है।

अतीन्द्रिय ज्ञानानंदस्वभावरूप दृष्टि के विषय में एकाग्र होने पर विकारी पर्याय का उत्पन्न न होना ही, भाव्य-भावकसंकरदोष का दूर करना- कहा जाता है। पहले विकार उत्पन्न हुआ फिर उसे दूर किया-ऐसा नहीं है। भविष्य में होनेवाली विकारी पर्याय वर्तमान में नहीं है इसलिए उसे भी दूर करने का प्रश्न नहीं है। स्वभावसम्मुख होने पर विकार उत्पन्न न होना ही रागादि को दूर करना है।

आचार्यदेव यहाँ पर बलपूर्वक मोह का तिरस्कार करके—ऐसा कहकर पुरुषार्थ करने की प्रेरणा देते हैं। अर्थात् जगत के किसी भी पदार्थ का मैं कर्ता-हर्ता नहीं हूँ, जगत् के कोई भी पदार्थ या शुभाशुभभाव मुझे सुखरूप या सहायक नहीं हैं, इसीलिए मुझे किसी से मोह नहीं करना—इसप्रकार मोह का तिरस्कार नास्ति द्वारा हुआ। तथा मैं ज्ञायकज्योति चैतन्यमूर्ति शुद्ध त्रिकाली आत्मतत्त्व हूँ, इसप्रकार जो अपने शुद्धस्वरूप में स्थिर हुआ, उसके मोह का तिरस्कार सहज ही हो जाता है। और यही सच्चा पुरुषार्थ है, सच्चा धर्म है, सच्ची भक्ति है।

यहाँ मध्यमस्तुति में आचार्यदेव मोह के तिरस्कार की बात करते हैं। अभी मोह का अभाव नहीं हुआ है अर्थात् यहाँ उपशमश्रेणी की बात है। जैसे-अग्नि को राख से दबा देते हैं; उसीप्रकार यहाँ मोह को दबा दिया है, किंतु उसका समूल नाश नहीं हुआ है।

इसप्रकार मोह का तिरस्कार होने से, भाव्य-भावकसंकरदोष का परिहार हो जाने से; जो जीव एकत्वस्वभाव में निश्चल होता हुआ, विश्व के ऊपर मानो तैरता हुआ, प्रत्यक्ष उद्योतरूप से सदा अंतरंग में प्रकाशमान, अविनाशी, स्वतःसिद्ध, परमार्थरूप अपने ज्ञानस्वभाव के द्वारा अन्य द्रव्यों के स्वभावों से होनेवाले समस्त अन्य भावों से परमार्थतः भिन्न अपने आत्मा का अनुभवन करते हैं, वे निश्चय से जितमोह हैं।

अनुभव के समय अपने शुद्धात्म-स्वरूप का अनुभव ऐसा होता है कि मानो सारे विश्व के पदार्थों से भिन्न ही उसका स्वभाव हो, सारे विश्व के पदार्थ उसके सामने तुच्छ हों, मैं ही सर्व जगत में सर्वोत्कृष्ट पदार्थ हूँ, तथा शुभाशुभविकारी भाव से मेरा स्वभाव कभी एकमेक हुआ ही नहीं है—ऐसा सारे जगत पर मानो तैरता हुआ प्रतिभासित होता है।

यहाँ पर आचार्यदेव ने बहुत से विशेषण लगाकर चैतन्यतत्त्व की महिमा गाई है।

मेरा ज्ञानस्वभाव पर से निराला और प्रत्यक्ष उद्योतरूप होने से सदा अंतरंग में

प्रकाशमान है। यहाँ ज्ञानस्वभाव पर से निराला अद्‌भुत चमत्कारी तत्त्व बताया है, क्योंकि उसके आधार पर ही हमारा सुख और आनंद अवलंबित है तथा वह सदा ही अंरतंग में प्रकाशमान तत्त्व है। सूर्य का तो सुबह उदय होता है और शाम को अस्त हो जाता है; परंतु चैतन्यसूर्य तो सदा ही अंतरंग में प्रकाशमान तत्त्व है।

अंतर में प्रगटरूप आत्मतत्त्व अविनाशी है, पुण्य-पाप के विकारीभाव और उसके फलरूप बाह्य इष्ट-अनिष्ट संयोग सब क्षणिक, नाशवान और अध्रुव हैं; इसके विपरीत ज्ञानानंद स्वभावी-आत्मा त्रिकालस्थायी, ध्रुव और शाश्वत है।

भगवान आत्मा स्वयं स्वत: ही सिद्ध है, उसे सिद्ध करने के लिए किसी भी परपदार्थ की, शरीर-मन-वाणी की किंचित्‌मात्र भी आवश्यकता नहीं है। उसे पर्याय में सिद्ध करने के लिए भी पुण्य का, राग का या परसंयोग का अवलंबन नहीं लेना पड़ता, यहाँ तक कि सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का अवलंबन भी नहीं लेना पड़ता, वह स्वयंसिद्ध वस्तु स्वावलंबन से ही सिद्ध होती है।

भगवान आत्मा ज्ञानस्वभाव के कारण अन्य द्रव्यों से अधिक है, भिन्न है। यहाँ ज्ञान से आत्मा की पहिचान तथा महिमा बताई है। जिसप्रकार मिठास के द्वारा शक्कर की पहिचान कराई जाती है; उसीप्रकार ज्ञान-लक्षण से आत्मा की पहिचान कराई है।

आत्मा के ज्ञान-लक्षण की तो इतनी महिमा है कि सर्वज्ञ के द्वारा भी अवर्णनीय है; उसे जानकर जो उसमें स्थिर होता है; वह अपनी भक्ति करता है, वह परमार्थस्तुति करता है।

यद्यपि यहाँ किसी विशेष तीर्थंकर या भगवान की स्तुति नहीं है; तथापि यहाँ यह कहा है कि जो अपने ज्ञानस्वभावी आत्मा को जानकर उसमें लीन है, वही आत्मा की सच्ची स्तुति है और जो अपने आत्मा की सच्ची स्तुति है, वही परमार्थ से तीर्थंकरों, भगवानों तथा सिद्धों की स्तुति है। इसप्रकार यह मध्यम परमार्थस्तुति है।

जिस जीव को प्रथम निश्चयस्तुति है, उस जीव को अस्थिरता के सद्‌भाव के कारण भगवान की भक्ति का शुभराग होता है, सो वह व्यवहारस्तुति है। यद्यपि यह शुभराग भी आत्मा का लाभ नहीं करता, परंतु जब तक पूर्ण वीतरागता प्रगट नहीं होती, तब तक देव-शास्त्र-गुरु के प्रति शुभराग आये बिना भी नहीं रहता, और यही भाव्य-भावकसंकरदोष है और इस दोष

का परिहार उपशमश्रेणी पर आरोहण करनेवाले मुनिराज द्वितीय मध्यमस्तुति के माध्यम से करते हैं।

इसप्रकार इस गाथा-सूत्र में एक मोह (चारित्रमोह) का ही नाम लिया है। उसमें 'मोह' पद बदलकर राग-द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, कर्म, नोकर्म, मन, वचन, काय, स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत इंद्रियरूप सोलह सूत्रों का भिन्न-भिन्न रूप से व्याख्यान समझना चाहिए।

सम्यग्दृष्टि ज्ञानी जीवों को भी अंतरंग भावक रागकर्म के उदय से भाव्यरूप परिणाम होता है और बहिरंग में बाह्य संयोगों की अनुकूलता से राग उत्पन्न होता है। वह राग का भाव्यरूप परिणाम भी आत्मा का स्वरूप नहीं है। इसप्रकार भेदज्ञान के बल से वीतरागस्वभावी आत्मा में स्थिरता की वृद्धि करना-यही परमार्थस्तुति है।

मैं क्रोधस्वरूप नहीं हूँ, परपदार्थ मुझे क्रोध नहीं कराते। यद्यपि मेरे स्वभाव में क्रोध का अभाव है, तथापि वर्तमान अवस्था में पुरुषार्थहीनता के कारण अस्थिरता-संबंधी क्रोध होता है, इसीलिए इस अस्थिरता का भी अभाव करके सहजज्ञानानंदस्वभाव में स्थिर होना यह द्वितीय निश्चयस्तुति है।

यह जीव मिथ्यात्व की अवस्था में शरीर के साथ एकत्वबुद्धि करता है; एकत्वबुद्धि के कारण कोई अन्य प्रशंसा करता है तो यह तीव्र अहंकार करता है और कोई निंदा करता है तो अत्यंत हीनता मानता है। परंतु यह शरीर तो जड़ है, रूपी है, अचेतन है और आत्मा का स्वरूप नहीं है। उसे लक्ष करके कोई प्रशंसा-निंदा करता है, तो भी उससे आत्मा का कोई फर्क नहीं पड़ता। इसप्रकार इकतीसवीं गाथा में भेदज्ञान के द्वारा मिथ्या मान्यता का अभाव कराया। परंतु जो भेदज्ञानी जीव हैं, उन्हें भी कमजोरी के कारण अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, संज्वलन संबंधी मानकषाय उत्पन्न होती है; जो अस्थिरता संबंधी मानकषाय का भी तिरस्कार करके उपशमश्रेणी में चढ़ते हैं, वे ही द्वितीय परमार्थस्तुति करते हैं।

उपरोक्त क्रोध और मान जो द्वेष के ही भेद हैं—उनका उपशम करना। अब राग के ही भेद जो माया और लोभ—उनका उपशम कराते हैं।

माया का अर्थ है—छल; उस छल से मैं तो अत्यंत भिन्न निश्छलस्वभावी हूँ। लोभ का

अर्थ है—परपदार्थों में आसक्ति भाव; उससे भी भिन्न मैं निर्लोभस्वभावी आत्मा हूँ। इसप्रकार भेदविज्ञान के बल से माया और लोभ का तिरस्कार करके, अपने निश्चल और निर्लोभ स्वभावी आत्मा का जो अनुभव करते हैं; वे ही मध्यम परमार्थस्तुति करते हैं।

अष्टकर्म भी आत्मा का स्वरूप नहीं है और अष्टकर्म के लक्ष से आत्मा में जो परिणाम होता है, वह भी आत्मा का स्वरूप नहीं है; इसलिए आत्मा के स्वरूप में ही रहना, स्थिर होना ही द्वितीय परमार्थस्तुति है।

नोकर्म भी मैं नहीं हूँ। पूर्व बाँधे कर्म के फलस्वरूप जो बाह्य में इष्ट-अनिष्ट संयोग मिलते हैं, उन्हें नोकर्म कहते हैं। जैसे-अच्छा शरीर, मकान आदि। परंतु नोकर्म से लक्ष हटाकर अपने ज्ञानानंदस्वभावी आत्मा में स्थिर होने से ही भाव्य-भावकसंकरदोष का अभाव होता है।

मन-वचन-काय भी आत्मा का स्वरूप नहीं है। आत्मा तो अंतरंग में प्रकाशमान, अविनाशी, स्वतःसिद्ध वस्तु है। उसमें जो स्थिर होते हैं, वे ही परमार्थस्तुति करते हैं।

इसप्रकार गाथा-सूत्र में मोह पद के स्थान पर पंचेन्द्रियों का भी अलग-अलग व्याख्यान समझना चाहिए।

जैसे रूप को देखकर अस्थिरता संबंधी झुकाव हो तो उस अस्थिरता को भी दूर कर स्वरूप में स्थिर होने से परमार्थस्तुति होती है।

यद्यपि इकतीसवीं गाथा में यह स्पष्ट हो गया है कि मैं इंद्रियों से भिन्न चेतनस्वभावी आत्मतत्त्व हूँ, क्योंकि इंद्रियाँ अचेतन हैं और मैं चेतन हूँ; तथापि पंचेन्द्रिय के विषयों को लक्षकर ज्ञानी को भी अस्थिरता संबंधी भाव्यभावकसंकरदोष लगता है। भेदज्ञान के बल से जो उस अस्थिरता संबंधी दोष को भी दूर करते हैं और उपशमश्रेणी पर आरोहण करते हैं, वे मुनिराज ही वास्तव में मध्यम परमार्थस्तुति करते हैं।

इसप्रकार ३२वीं गाथा में आचार्यदेव ने भाव्य-भावक संकरदोष का परिहार किया है और ३३वीं गाथा में भाव्यभावक-भाव के अभावरूप तृतीय निश्चयस्तुति करेंगे।

* * *

और कैसा है यह आत्मा?

परमपूज्य दिगंबराचार्य कुंदकुंद के प्रसिद्ध परमागम नियमसार की ४५ व ४६वीं गाथा एवं उसमें समागत श्लोकों पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथाऐं इसप्रकार हैं :-

वण्णरसगंधफासा थीपुंसणओसयादिपज्जाया।
संठाणा संहणणा सव्वे जीवस्स णो संति ॥४५॥
अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं ॥४६॥

वर्ण, रस, गंध, स्पर्श, स्त्री, पुरुष, नपुंसकादि पर्यायें, संस्थान और संहनन-यह सभी इस जीव में नहीं हैं।

जीव को अरस, अरूप, अगंध, अव्यक्त, चेतनागुणवाला, अशब्द, अलिंगग्रहण (लिंग से अग्राह्य), और जिसे कोई संस्थान नहीं कहा - ऐसा जान।

[गतांक से आगे]

त्रिकाली सामान्यद्रव्य तथा कारणपर्यायसहित संपूर्ण कारणपरमात्मा दृष्टि में लेना, वह धर्म का कारण है।

कारणपरमात्मा प्रत्येक जीव है और उसमें ज्ञान, दर्शन, आनंद आदि भरपूर भरा पड़ा है, उसके आश्रय से—श्रद्धा-ज्ञान से धर्म होता है। वेदांत में पर्याय को उड़ा दिया है, सब मिलकर एक आत्मा कहते हैं, किंतु वस्तुस्वरूप ऐसा नहीं है। संसारदशा एक समय की पर्याय है, व्यवहारनय से वह सत् है; परंतु द्रव्यदृष्टि कराने के लिये उसे गौण किया है—अभाव नहीं किया है। संसार, मोक्षमार्ग, मोक्ष—व्यवहारनय का विषय है, उसे गौण करके परमपारिणामिकभाव और उसकी वर्तमान जो ध्रुवकारणपर्याय उस सहित संपूर्ण ध्रुव भगवान आत्मा शुद्ध पड़ा है। उत्पाद-व्ययरहित एकरूप रहनेवाली कारणपर्याय वह विशेष और त्रिकाली परमपारिणामिकभाव वह सामान्यध्रुव, इन दोनों सहित पूर्ण कारणपरमात्मा

द्रव्यार्थिकनय का विषय है। उसे दृष्टि में लेने से धर्मदशा प्रगट होती है। यहाँ शुद्धज्ञानचेतना और आनंदचेतना की प्रधानता से कथन है। उत्पाद-व्ययरहित त्रिकाली ध्रुव कारणशुद्ध चेतना तथा उसके फलरूप सहज आनंदचेतना प्रत्येक जीव को होती है।

अहो! टीकाकार मुनिराज ने अध्यात्म की मस्ती में बहुत सूक्ष्म बात, अद्भुत बात नियमसार में कही है। कारणपरमात्मा का ऐसा स्पष्ट स्वरूप किसी अन्य ग्रंथ में नहीं है। मूलगाथा में चेतनागुण शब्द है, उसमें से टीकाकार ने मूल अभिप्राय को निकालकर अलौकिक टीका की है।

किस कारण के आधार से आनंद और ज्ञानरूपी कार्य प्रगट होता है?

तुझे कार्य करना है न! यदि परजीव और परपदार्थों का करना है; तो यह तो तेरे अधिकार से बाहर की बात है। यदि तुझे राग करना है; तो यह भी अनादिकाल से करता ही आया है, इससे तो संसार बना ही है। तेरा वास्तविक कार्य तो जानने का ही है और वही तू कर सकता है। वह कार्य किसमें से आयेगा? इसका निर्णय कर।

(१) निमित्त और परपदार्थों की शक्ति नहीं, जो तुझे ज्ञान-आनंद दे सकें।

(२) राग-व्यवहार की शक्ति नहीं जो तुझे ज्ञान-आनंद प्रदान कर सके।

(३) क्षायोपशमिक अंश-पर्याय की शक्ति नहीं तो तुझे नया-नया ज्ञान-आनंद दे सके।

(४) शुद्ध ज्ञानचेतना और फलरूप आनंदचेतना अनादि-अनंत कारणपरमात्मा में भरी पड़ी है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान-एकाग्रता से कार्यरूप शुद्धज्ञान आनंदचेतना प्रगटती है। भगवान की दिव्यध्वनि में यही उपदेश आया है कि इस कारणपरमात्मा के आधार से सम्यग्दर्शन, चारित्र, शुक्लध्यान, मोक्षदशा तथा आनंददशा प्रगटती है।

इसप्रकार जब जीव अपने में कार्य प्रगट करे तब निमित्त से कार्य हुआ अथवा व्यवहार से निश्चय हुआ, ऐसा उपचार-कथन करने में आता है। अथवा मोक्षमार्ग से मोक्ष हुआ—ऐसा व्यवहार से बोला जाता है। परंतु निश्चय के बिना व्यवहार हो सकता नहीं, मोक्षरूपी कार्य का वास्तविक कारण तो त्रिकाली शुद्धस्वभाव है। उस कारणपरमात्मा के शुद्धज्ञानचेतना तथा सहजफलरूप आनंदचेतना होती है। यह एक ही कारण है, दूसरा कोई कारण है नहीं, मात्र उपचार से अन्य को कारण कहा जाता है।

शुद्धकारणपरमात्मा संसार अथवा मोक्ष में एकरूप है, अतः वही श्रद्धा में लेने योग्य है।

सहजशुद्धज्ञानचेतनास्वरूप निजकारणपरमात्मा संसार अवस्था में अथवा मुक्तावस्था में सर्वथा एकरूप होने से उपादेय है, ऐसा हे शिष्य! तू जान। क्या उपादेय है? किसकी श्रद्धा करने से सम्यग्दर्शन प्रगट होता है? स्वाभाविक सहज शुद्धज्ञायकस्वभाव, जिसके साथ आनंद रहता है, वह निजकारणपरमात्मा है, जो संसार अथवा मुक्तावस्था में सर्वथा एकरूप है-वही उपादेय है, वही अंगीकार करनेयोग्य है। संसारावस्था प्रथम से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक है, वह अनादि-सांत है और मोक्षदशा सादि-अनंत है। दोनों अवस्थाओं में शुद्धचेतनास्वभाव एकरूप है। सिद्धदशा प्रगट होने पर शुद्धज्ञानचेतना नवीन प्रगट होती है, वह अनादि-अनंत नहीं है, वह व्यवहारनय का विषय है, अतः जाननेयोग्य तो है, किंतु आदर करनेयोग्य नहीं है।

चेतना में बारह प्रकार के उपयोग हैं, वे आदरणीय नहीं। अज्ञान अनादि-सांत है और केवलज्ञान सादि-अनंत है, किंतु आदरणीय नहीं। दृष्टि को दृष्टि आदरणीय नहीं; दृष्टि को शुक्लध्यान, केवलज्ञान अथवा सिद्धपद भी आदरणीय नहीं है; दृष्टि को तो सहजकारण-परमात्मा जो एकरूप है-वही आदरणीय है।

निर्मलपर्याय भी अस्थिर है-उसके सथ नाता मत रखो; कारणपरमात्मा जो एकरूप है-उसी के साथ नाता रखो; शुद्धस्वभाव ही धर्म का कारण है, ऐसा तू जान।

यहाँ मुनिराज कहते हैं कि हे शिष्य तू जान! तू ऐसा जान कि सम्यग्दर्शन अथवा केवलज्ञान की प्राप्ति करने के लिये एकरूप कारणपरमात्मा ही उपादेय है। इससे सिद्ध हुआ कि शिष्य जानने की पात्रता रखता है, शक्ति रखता है। केवली, मुनि अथवा संत तुझे ज्ञान कराने में समर्थ नहीं हैं, अतः वे कहते हैं कि 'तू जान'। चौदह पूर्व और चारों अनुयोगों का सार इसमें आ जाता है।

लौकिक में भी कहा जाता है कि अस्थिर विचारवाले मनुष्य के साथ व्यापार, धन्धा, नाता आदि मत करो, स्थिर मनुष्य के साथ करो। उसीप्रकार यहाँ कहते हैं कि पर्याय मलिन हो या निर्मल हो, किंतु अस्थिर है-उसके साथ नाता मत रखो। स्थिर रहनेवाला कारणपरमात्मा अनादि-अनंत एकरूप है-उसी के साथ नाता रखो, क्योंकि वही एक धर्म का कारण है-ऐसा तू जान।

श्री पद्मनंदि आचार्य पद्मनंदिपंचविंशतिका के एकत्वसप्तति नामक अधिकार के ७९वें श्लोक में कहते हैं :-

"आत्मा भिन्नस्तदनुगतिमत्कर्म भिन्नं तयोर्या
प्रत्यासत्तेर्भवति विकृतिः साऽपि भिन्ना तथैव।
कालक्षेत्रप्रमुखमपि यत्तच्च भिन्नं मतं मे
भिन्नं भिन्नं निजगुणकलालंकृतं सर्वमेतत्॥

मेरा यह मंतव्य है कि आत्मा भिन्न है और उसके पीछे जानेवाला कर्म भिन्न है। आत्मा और कर्म की अति निकटता से जो विकृति होती है, वह भी उसीप्रकार (आत्मा से) भिन्न है। तथा काल-क्षेत्रादिक जो भी हैं, वे भी (आत्मा से) भिन्न हैं।"

निज-निज गुणकला से अलंकृत यह सब जुदे-जुदे हैं अर्थात् अपने-अपने गुण-पर्यायों से युक्त सर्वद्रव्य अत्यंत भिन्न-भिन्न हैं।

जिसप्रकार कर्म और आत्मा भिन्न हैं; उसीप्रकार विकार और कारणपरमात्मा भी भिन्न हैं, अतः स्वभावदृष्टि कर।

श्री पद्मनंदि आचार्य कहते हैं कि मेरा मंतव्य है कि आत्मा भिन्न है और कर्म जो कि उसके पीछे-पीछे अपने कारण से जाता है, उसका आत्मा से कोई संबंध नहीं है। आत्मा और कर्म एकक्षेत्र में हैं, अति निकट हैं। अज्ञानी जीव कर्म के ऊपर दृष्टि करके मिथ्यात्व, अज्ञान, राग-द्वेष करता है; वे एकसमय की अवस्था में हैं, किंतु शुद्धस्वभाव में नहीं हैं। जैसे आत्मा और कर्म भिन्न-भिन्न हैं, वैसे ही आत्मा और विकार भी भिन्न-भिन्न हैं; ऐसा कहकर विकार पर से दृष्टि हटाई है और शुद्ध चैतन्य की दृष्टि कराई है। विकार, कर्म, और निमित्त की रुचि मत कर, किंतु त्रिकाली स्वभाव की रुचि कर- ऐसा कहने का आशय है।

आत्मा परद्रव्य के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से जुदा है, अतः स्व-आत्मा के समक्ष देख।

आत्मा दूसरे के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से नास्तिरूप है, उनके गुण-पर्यायों से भिन्न है। प्रत्येक द्रव्य निज-निज गुणकला से शोभायमान है और प्रत्येक भिन्न-भिन्न है, इसलिए कोई द्रव्य किसी को सहायता नहीं करता। चलने में धर्मद्रव्य और ठहरने में अधर्मद्रव्य सहायता करे-ऐसा बनता नहीं, क्योंकि प्रत्येक द्रव्य असहाय है; अतः परद्रव्य से दृष्टि हटाकर

निज द्रव्य पर दृष्टि डाल। तेरा कर्म जुदा है और तेरा विकार भी तेरे कारणपरमात्मा से जुदा है, इसलिए शुद्धद्रव्य की श्रद्धा करने पर सुखी होगा।

अब ४५वीं व ४६वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए मुनिराज श्लोक कहते हैं:-

''असति च सति बन्धे शुद्धजीवस्य रूपाद्
रहितमखिलमूर्त्तद्रव्यजालं विचित्रम्।
इति जिनपतिवाक्य वक्ति शुद्धं बुधानां
भुवनविदितमेतद्भव्य जानीहि नित्यम्॥७०॥

बन्ध हो या न हो (अर्थात् बंधावस्था में या मोक्षावस्था में), समस्त विचित्र मूर्तद्रव्यजाल (अनेकविध मूर्तद्रव्यों का समूह) शुद्धजीव के रूप में व्यतिरिक्त है, ऐसा जिनदेव का शुद्धवचन बुध पुरुषों को कहते हैं। इस भुवनविदित को (इस जगतप्रसिद्ध सत्य को) हे भव्य तू सदा जान।''

बंध हो या न हो, आत्मा कर्म से त्रिकाल भिन्न है।

संसारदशा के समय बंध का निमित्त पुद्गलकर्म हो अथवा मोक्षदशा के समय कर्म का अभाव हो, परंतु समस्त विचित्र मूर्तकर्मों का समूह शुद्धजीव के रूप से जुदा है। कर्म भले ही एक क्षेत्र में हो, किंतु आत्मा उससे त्रिकाल भिन्न है। कर्म से बँधा हुआ हूँ—ऐसी स्थिति के, ऐसे रस के, ये कर्म इन प्रकृतिरूप बँधे—यह बात जाने दे, तेरे में तो कर्म का अत्यंत अभाव है, आकुलित मत हो; ऐसा देवाधिदेव का वचन है। भगवान शुद्ध है, अत: उनका वचन भी शुद्ध है। व्यवहार का वचन भले हो-गोम्मटसार में अनेक प्रकार से कथन हो-परंतु निश्चयनय का वचन शुद्ध है। वह कहता है कि आत्मा कर्मों से तीन काल भिन्न है इसलिये घबड़ा नहीं। सारा कारणशुद्धपरमात्मा तेरे पास पड़ा है। मुनिराज ने कारणपरमात्मा के गाने गाकर इस श्लोक की रचना की है।

हे भव्य! तेरा शुद्धआत्मा कर्म से और विकार से भिन्न है - ऐसा तू जान।

यह जगप्रसिद्ध बात है। अज्ञानी जीव कि जो इसप्रकार नहीं जानता उसकी जगत में गणना नहीं की है। यहाँ तो चतुर पुरुष कहते हैं कि हे योग्य जीव! तेरा आत्मा कर्म और विकार से सदा भिन्न है-ऐसा तू जान। प्रथम व्यवहार और बाद में निश्चय, इसप्रकार पहले-पीछे की बात जाने दे। तुझे शांति चाहिये और धर्म करना हो तो कर्म और विकार से आत्मा भिन्न है-ऐसा

जान। निश्चयस्वभाव का ज्ञान होने पर राग का, अपूर्ण पर्याय का, निमित्त का, व्यवहार का ज्ञान भी हो जायेगा। जिसको निश्चय का ज्ञान नहीं है, उसे व्यवहार का ज्ञान नहीं होता। भगवान मोक्ष पधारे वह भी शुद्धस्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान-एकाग्रता से ही पधारे थे। आज भी इसी विधि से और भविष्य में भी इसी विधि से जायेंगे, अत: कर्म और विकार से आत्मा को भिन्न जान।

एकसमय की पर्याय को गौण करें तो सारे संसारीजीव सिद्ध समान हैं।

संसार में रहनेवाले सभी आत्मा सिद्ध समान है। लेंडी पीपल में चौंसठ प्रहरी चरपराहट प्रगट होती है, वह स्वभावशक्ति में भरी हुई है। वर्तमान एकसमय की थोड़ी चरपराहट है, उसे ध्यान में न लें तो वह पीपल शक्तिरूप से चौंसठ प्रहरी है। जैसे तिल में तेल की शक्ति भरी है, उसीप्रकार संसारी आत्मा भी शक्तिरूप से पूर्ण ही हैं। एकसमय के विकार को गौण कर दिया जाये तो संसार में रहनेवाले सभी आत्मा अशरीरी सिद्ध सदृश शुद्ध ही हैं।

अपने आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान-एकाग्रता से केवलज्ञानरूपी सुप्रभात उगता है, जो कभी अस्त नहीं होता।

यह बात ऊँची श्रेणी की नहीं है, यह तो प्रथम धर्म की बात है। लौकिक में प्रथम यह निश्चित करता है कि तिल में तेल है और तभी तिल को पेलने का भाव करता है और निकलनेवाले तेल को तलने के काम में लाता है। रेती को पेलता नहीं है, क्योंकि उसमें तेल है नहीं। वैसे ही आत्मा में आनंदशक्ति भरी है, यह प्रथम निश्चय करे, एकसमय के विकार को गौण करे तो ज्ञान-आनंद से आत्मा भरपूर पड़ा है-ऐसी प्रतीति उत्पन्न हो, पश्चात् उसमें एकाग्रता करे तो शक्ति में से आनंद आदि पर्यायें प्रगट हों और आनंद अनुभव में आवे। इसलिये आत्मा परपदार्थ से जुदा है, किसी का कर्त्ता-हर्त्ता नहीं, तथा राग-द्वेष भी मेरा स्वरूप नहीं; परंतु अनंतज्ञान-दर्शनादि ही मेरा स्वरूप है, मेरा स्वभाव स्व-परप्रकाशक है-जगत के पदार्थों को, मेरे में रहनेवाले अपूर्णता को, तथा राग को जानने का उसका स्वभाव है; ऐसा प्रथम निर्णय करे तो सम्यग्दर्शन प्रगट हो और एकाग्रता करने पर चारित्र प्रगट होकर केवलज्ञान हो और फिर कभी नाश न हो।

द्रव्यसंग्रह प्रवचन

वृहद्द्रव्यसंग्रह पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सन् १९५२ में हुए थे। जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उन्हें यहाँ क्रमशः दिया जा रहा है।

[गतांक से आगे]

[गतांक से आगे]

धम्माऽधम्मा कालो पुग्गलजीवा य संति जावदिये।
आयासे सो लोगो तत्ता परदो अलोगुत्तो॥२०॥

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल ये सभी द्रव्य आकाश के जितने भाग में रहते हैं, वह लोकाकाश है, इसके अलावा अलोकाकाश है।

चैतन्यलक्षण वाले जीव अनंत और अरूपी, स्पर्शादिगुण वाले अनंतानंत पुद्गलरूपी हैं। जीवों और पुद्गलों की गति और स्थिति में निमित्त क्रमशः धर्म और अधर्म द्रव्य अचेतन और अरूपी तथा संख्या में एक-एक हैं। अचेतन, अरूपी और एकप्रदेश वाला कालद्रव्य असंख्यात है। ऐसे पाँच प्रकार के द्रव्य जहाँ रहते हैं, वह लोकाकाश है।

लोकाकाश असंख्य योजन प्रमाण तथा अलोकाकाश अपरिमित है।

आकाशद्रव्य अपरिमित होकर भी केवलज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष जानने में आता है। जगत में अनंतानंत पदार्थ ज्ञेय हैं, उन सभी को केवलज्ञान जानता है। आकाशद्रव्य भी अनंत ज्ञेयों में से एक है। अतः वह भी केवलज्ञान के ज्ञेयों के अनंतवें भाग में आ जाता है। इसप्रकार केवलज्ञान के ज्ञेयों में आकाश अनंतवें भाग है।

आकाश अपरिमित क्षेत्रवाला है, इससे उसकी महिमा नहीं है; महिमा तो उसको जाननेवाले ज्ञान अर्थात् केवलज्ञान की है जो लोकालोकाकाश सहित अनंत द्रव्यों को एक साथ प्रति समय जानता है।

'आत्मा की सच्ची समझ बिना धर्म नहीं होता है'—इसलिये मैं कौन हूँ? आत्मा क्या है तथा उसकी सामर्थ्य कितनी है? द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप क्या है? यह सब हमें जानना चाहिये, शास्त्रों का अभ्यास जरूर करना चाहिये।

यहाँ सोम नामक राजश्रेष्ठी प्रश्न करता है। देखो पंचमकाल के मुनि से पंचम काल का नगरसेठ पूछता है। उसने छह द्रव्यों का अभ्यास किया है। वह पूछता है—

''हे प्रभो! केवलज्ञान के अनंतवें भाग प्रमाण आकाश द्रव्य है, उसके भी अनंतवें भाग में बीचोंबीच लोकाकाश है, वह अनादिनिधन है, किसी के द्वारा उसकी रचना नहीं हुई अर्थात् ब्रह्मा ने उसे नहीं बनाया है-वह स्वयंनिर्मित ही है, किसी के द्वारा उसका विनाश संभव नहीं है। शंकर जगत का संहार करते हैं-यह बात नहीं है, और अनादिनिधन इस लोक की रक्षा भी कोई नहीं करता है। लोकाकाश अपने असंख्य प्रदेशों को धारण करनेवाला है, अतः उसका कोई धर्त्ता भी नहीं है, वह तो असंख्यात प्रदेशी है। इस असंख्यात प्रदेशी लोक में अनंत जीव, उनसे भी अनंतगुणे पुद्गल, लोकाकाश प्रमाण असंख्यात कालद्रव्य, धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य—ये सभी किस रीति से रहते हैं? आत्मा अरूपी और असंख्यातप्रदेशी है, लोकाकाश के जितने प्रदेश हैं, उतने ही प्रदेश प्रत्येक जीव (आत्मा) के हैं-फिर कैसे अनंत जीव और अनंतानंत पुद्गल लोकाकाश में समाये हुए हैं?''

अब आचार्यदेव उत्तर देते हैं—जिसप्रकार एक दीपक के प्रकाश में अनेक दीपकों का प्रकाश समा जाता है, अनेक दीपकों का प्रकाश आने पर पूर्वप्रकाश संकुचित नहीं होता, किंतु साथ ही रहता है; उसीप्रकार आकाश में अनंत पदार्थ एक दूसरे के होने पर एक साथ रह सकते हैं।

तथा जिसप्रकार गूढ़ रस से भरे हुए पात्र में अथवा पारे में बहुत सा स्वर्ण समा जाता है, राख से भरे हुए घड़े में सुईयाँ और ऊँट का दूध समा जाता है; उसीप्रकार विशेष अवगाहन शक्तिवाले असंख्यातप्रदशी लोक में जीव-पुद्गल आदि सभी द्रव्य समा जाते हैं, एकसाथ रह सकते हैं।

यदि इसप्रकार अवगाहन शक्ति न हो, तब तो असंख्यातप्रदेशी लोक में मात्र असंख्यात पुद्गल परमाणुओं का ही निवास हो सकेगा। असंख्यातप्रदेशी में से एकप्रदेश में एक ही परमाणु रह सकता हो तो फिर लोक में असंख्यात परमाणु ही होना चाहिये, अनंतानंत नहीं। यदि सारे लोक में असंख्य परमाणु ही माने जायें तो प्रत्यक्ष और आगम से विरोध आता है। इसी बात को आचार्य उदाहरण में समझाते हैं। जैसे-आत्मा शुद्धनिश्चयनय से, शक्तिरूप से निरावरण है, शुद्ध है, बुद्ध है, एकस्वभाव का धारक है; वैसा ही व्यवहारनय से, व्यक्तिरूप से

निरावरण, शुद्ध, बुद्ध नहीं है। यदि व्यवहारनय से उसे शुद्ध, बुद्ध माना जाये तो प्रत्यक्ष और आगम से विरोध आता है।

निश्चयनय से जीव शुद्ध है, बुद्ध है, आवरणरहित है, ज्ञान का घनपिण्ड है, एकस्वभाव का धारक है। निगोद से लेकर सिद्ध आदि सभी जीव भव्य-अभव्य आदि स्वभाव से शुद्ध-बुद्ध हैं। संसारी जीव की पर्याय में आवरण है। यदि पर्याय में आवरण न हो तो फिर उसे केवलज्ञान प्रकट हो जाना चाहिये, अनंत सुख हो जाना चाहिये। किंतु वर्तमान में केवलज्ञान नहीं है, और दु:ख का सद्भाव देखा जाता है, अत: पर्याय में आवरण है ही-यह निश्चित समझ लेना चाहिये।

प्रत्येक जीव में ज्ञानादि अनंत गुण है तथा प्रत्येक गुण की अनंत पर्यायें हैं। वर्तमान में ज्ञान-दर्शन-वीर्यादि गुणों की दशा हीन तथा चारित्र की दशा विपरीत होने पर निमित्तभूत कर्मों के परमाणु भी अनंत होना चाहिये।

प्रत्येक गुण की अनंत शक्ति है, वह प्रकट नहीं होती तो अपने करण से ही प्रकट नहीं होती है, परंतु अनंतता प्रकट न होने में निमित्तरूप अनंत कर्मपरमाणु होते हैं। इसप्रकार सभी गुणों की अपेक्षा एक जीव में अनंत पुद्गल कर्मपरमाणु होते हैं। लोक में अनंत जीव हैं, उन सभी जीवों की शुद्धदशा प्रकट न होने में अनंत परमाणु होना चाहिये, असंख्य नहीं। फिर भी असंख्यप्रदेशी लोक में असंख्यात परमाणु ही माने जायें तो ज्ञानादि गुणों की परिपूर्ण शुद्ध अवस्था हो जानी चाहिये पर ऐसा दिखाई नहीं देता, अत: जीवों की संसार अवस्था में निमित्तभूत अनंत कर्म हैं।

इसप्रकार लोक में अनंत परमाणु हैं—यह सिद्ध हो जाने पर आकाश अनंत पुद्गल परमाणुओं और उनसे संबंधित सभी जीवों को स्थान दे सकता है, यह स्वयमेव सिद्ध हो गया।

लोक का क्षेत्र असंख्य प्रदेशी है, आत्मा का क्षेत्र भी असंख्य प्रदेशी है। यहाँ क्षेत्र का माहात्म्य नहीं है, माहात्म्य तो उनके स्वभाव में है। जिसप्रकार आत्मा का माहात्म्य ज्ञानादि गुणों से है, उसीप्रकार आकाश का माहात्म्य अवगाहन स्वभाव से है, क्षेत्र से नहीं। असंख्यप्रदेशी लोक में अनंतानंत पदार्थ रहते हैं यही माहात्म्य है—इसको परमाणु से समझाते हैं।

लोक में असंख्य परमाणु स्वीकार करने पर विरोध आता है, क्योंकि प्रत्येक जीव में परिणामों की विविधता और विचित्रता में, ज्ञानादिक गुणों की पर्यायों में अशुद्धता और

हीनाधिकता दिखाई देती है, और वह भी अनेक प्रकार से। जब ऐसा है तो ज्ञानादि गुणों के आवरण में निमित्तरूप विविध कर्म होने चाहिये अथवा सभी जीवों को निमित्तरूप आवरण के अभाव में शुद्ध हो जाना चाहिये, परंतु ऐसा नहीं है। प्रत्येक दु:ख का सद्भाव होने से जीव अशुद्ध ही है और उसकी अशुद्धता में निमित्तभूत अनंत कर्म भी हैं–यह बात एक जीव की अपेक्षा से है। अनंत जीवों की अपेक्षा से तो अनंतानंत पुद्गलकर्म परमाणु सिद्ध होते हैं। अत: आकाश में अनंत जीव (आत्मायें) और उन पर आवरणस्वरूप अनंतानंत कर्म अर्थात् अनंतानंत पदार्थ रहते हैं–यह सिद्ध हुआ।

असंख्यप्रदेशी लोकाकाश में अनंत द्रव्य किसप्रकार समाते हैं? इसका उत्तर 'अस्ति' से दिया था–अब 'नास्ति' से समझाते हैं। यदि लोकाकाश के असंख्य प्रदेशों में परमाणु ही माने जायें तो विरोध आता है, क्योंकि अनंत जीव और उनके आवरण में निमित्तभूत अनंतानंत कर्म सिद्ध होते हैं।

संसारी जीवों के विकारी और अविकारी परिणमन में कम ज्यादापना दिखाई देता है। जैसे—कोई अल्पज्ञान वाला है, कोई अधिक ज्ञानवाला है, कोई क्रोधी, मानी, कपटी एवं लोभी है, कोई नास्तिक है, कोई आस्तिक है, कोई आत्मा है—ऐसा माननेवाला है, कोई साधारण मान्यतावाला, कोई विशेष मान्यतावाला है, कोई सम्यग्दर्शन प्रकट कर धर्म प्रकट करनेवाला है—ऐसे अनंतानंत जीव हैं। यदि लोक में असंख्य परमाणु ही हों तो विविधता और विचित्रता से सहित नैमित्तिक पर्यायवाले जीवों को वैसी विविधता और विचित्रतावाले कर्म सिद्ध नहीं होते हैं।

तथा कोई निगोद का जीव है, कोई एकेन्द्रियादि जीव हैं, कोई मनुष्य है, कोई व्यापारी है, कोई वकील है—इत्यादि जीवों की वर्तमान अवस्था में विविधता दिखाई देती है। और आवरण में अनंत परमाणु स्वीकार न करने पर विविधता सिद्ध नहीं होती, क्योंकि प्रत्यक्ष और आगम से विरोध आता है।

शास्त्र कहते हैं कि पर्याय में विकार है, फिर भी कोई विकार स्वीकार न करे तो शास्त्र-विरोधी होता है। और यदि विकाररहित दशा सभी की होवे तो शास्त्र का उपदेश निरर्थक हो जाता है। भाई! शास्त्र तो कहते हैं कि सभी जीवों की पर्याय में सर्वज्ञता और वीतरागता नहीं है।

लोक में असंख्य परमाणु ही मानने पर पर्याय में शुद्धता स्वीकार करनी पड़ती है जो कि शास्त्रसम्मत नहीं है।

स्व के लक्ष्य से भूल नहीं होती है, भूल तो पर के लक्ष्य से ही होती है। वर्तमान में जीव के भूल है और उसमें निमित्त कर्म हैं।

इसप्रकार लोक में अनंत कर्म सिद्ध होने पर अनंत पुद्गल सिद्ध हो जाते हैं तथा नैमित्तिक पर्याय की अशुद्धता की विविधता सिद्ध होने पर अनंत जीव सिद्ध हुए। अतः असंख्यात प्रदेशी लोक में जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल आदि अनंत द्रव्यों के रहने में कोई विरोध नहीं है, अपितु रहते ही हैं–यह स्पष्ट हुआ।

इसप्रकार आकाशद्रव्य संबंधी व्याख्यान पूरा हुआ। [क्रमशः]

आत्म-साधना

हे धर्मबंधु! यह आत्मा को साधने का अवसर है। इस समय तू दुनियाँ की खटपट में रुककर अपनी आत्म-साधना के लक्ष को मत चूकना।

आत्मतत्त्व अति महान है; ऐसे महान आत्मतत्त्व को लक्षगत करना यही महापुरुष की सेवा है।

अपने चैतन्य की महानता को लक्ष में लेगा तो सांसारिक घटनाऐं तुझे आकर्षित नहीं कर सकेंगी। अरे चैतन्य की ऐसी महानता को भूलकर जगत के छोटे-मोटे प्रसंगों में उलझ जाना मुमुक्षु को शोभा नहीं देता।

जहाँ आत्म-साधना का महान प्रयोजन है वहाँ सांसारिक मान या अपमान, निंदा या प्रशंसा, अनुकूलता इन किसी की कोई गिनती नहीं है। आनंदमय आत्मा की साधना में जगत की कोई गिनती नहीं है। आनंदमय आत्मा की साधना में जगत की ओर क्या देखना? मुमुक्षु को अपनी आत्म-साधना का ऐसा प्रेम, ऐसा उल्लास, ऐसी शांति और ऐसी तल्लीनता है कि उनके अतिरिक्त अन्य किसी कार्य में रुकना उसे अच्छा नहीं लगता।

- पूज्य कानजीस्वामी

ज्ञान-गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से किये गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर।

प्रश्न- समयसार जैसे महान अध्यात्मशास्त्र को पढ़-सुनकर भी लोग आगे क्यों नहीं बढ़ते ?

उत्तर- कियाकांड की दृष्टिवाले को ऐसा लगता है कि अमुक व्यक्ति समयसार सुनता है फिर भी आगे नहीं बढ़ता। कुछ बाह्य त्याग, तप, व्रतादिक क्रियायें करे तो ही उसे आगे बढ़ा हुआ दिखाई पड़ता है। किंतु भाई! समयसार का पठन, मनन, श्रवण करके परद्रव्य की भिन्नता, परद्रव्य का अकर्तृत्व, रागादि भावों में हेयबुद्धि और अंतर में विराजित परमात्मशक्ति का उपादेयपना निरंतर उसकी श्रद्धा-ज्ञान में चल रहा है और उससे जो पर्याय में सुधार हुआ है, वह क्या आगे बढ़ना नहीं है ? अंदर में श्रद्धा-ज्ञान में सत्य के संस्कार पड़ते हैं वही आगे बढ़ना है। श्रद्धा-ज्ञान को सम्यक् किये बिना जो त्यागव्रतादि किया जाता है, उसके संबंध में आत्मानुशासनकार श्री गुणभद्राचार्य तो कहते हैं कि आत्मभानरहित जो भी बाह्य तपादि है, वह सब अज्ञानी का बालतप है। अंतरंग मिथ्यात्व के त्याग बिना बाह्य त्याग को सच्चा त्याग नहीं कहते। अंदर में श्रद्धा-ज्ञान-स्वरूपाचरणचारित्र में जो सुधार होता है, वही सच्चा सुधार है और वही आगे बढ़ना है; परंतु बाह्यदृष्टिवंत को वह दृष्टिगोचर नहीं होता।

प्रश्न- मार्ग की यथार्थ विधि का क्रम क्या है ?

उत्तर- आत्मा अचिंत्य सामर्थ्यवाला है, उसमें अनंत गुणस्वभाव हैं, उसकी रुचि हुए बिना उपयोग पर में से पलटकर स्व में आ सकता नहीं। पाप भावों की रुचि में जो जीव पड़ा है, उसकी तो यहाँ चर्चा ही नहीं है; यहाँ तो पुण्य की रुचिवाला बाह्य त्याग करे, तप-शील-संयम पालन करे, द्रव्यलिंग यथाविधि धारण करे; तथापि जहाँ तक पर की रुचि अंतर में पड़ी है, वहाँ तक उपयोग पर की ओर से पलटकर स्व-स्वभाव की ओर नहीं

आ सकता। इसलिए पर की रुचि की दिशा बदलने पर ही उपयोग पर से हटकर स्व में आ सकता है। मार्ग की यथार्थ विधि का यह क्रम है।

प्रश्न– प्रथम अशुभराग टाले और शुभराग करे, पश्चात् शुद्धभाव हो–ऐसा क्रम है न?

उत्तर– नहीं भाई! यह क्रम ही नहीं है। प्रथम सम्यग्दर्शन प्रकट होता है, पश्चात् एकदम शुभराग टल सकता नहीं, इसलिए पहले अशुभराग टलकर शुभराग आता है–यह साधक के क्रम की बात है।

प्रश्न– तो अज्ञानी को क्या करना?

उत्तर– अज्ञानी को प्रथम वस्तुस्वरूप का सच्चा ज्ञान करके आत्मा का भान करना चाहिये। यही सम्यग्दर्शन प्राप्त करने का सच्चा उपाय है। शुभराग का क्रियाकांड करना सच्चा उपाय नहीं है।

प्रश्न– ज्ञानी तो व्यवहार को हेय मानता है, फिर ज्ञानी के व्यवहार का फल संसार क्यों?

उत्तर– ज्ञानी का व्यवहार भी राग है और राग का फल संसार है। श्रावक को षट्आवश्यक, मुनि को पंच महाव्रत का विकल्प होता है, आता है; उसको निश्चय का सहचर जानकर जिनवाणी में बहुत वर्णन किया गया है, परंतु इस राग का फल संसार है—ऐसा कहा है। जो जीव इस शुभराग से लाभ मानता है अथवा शुभराग करते-करते धर्म हो जायेगा—ऐसा मानता है, वह तो मिथ्यादृष्टि है; अतः संसार-भ्रमण करेगा ही।

प्रश्न– जिनवाणी में कथित व्यवहार का फल भी यदि संसार है, तो उसके कथन से क्या लाभ?

उत्तर– निश्चयदर्शन-ज्ञान-चारित्र के साथ अपूर्णदशा के कारण राग की मंदता में किस-किस प्रकार का मंद राग होता है; चौथे, पाँचवें, छठे, गुणस्थानों की भूमिका में राग की क्या स्थिति होती है; पूजा, भक्ति, अणुव्रत, महाव्रतादि होते हैं; उनका व्यवहार बताने के लिये जिनागम में उनका कथन किया गया है; परंतु इस राग की मंदता के व्यवहार का फल तो बंधन और संसार है।

प्रश्न– शरीर को आत्मा से भिन्न कहा, यह तो ठीक है, जँचता भी है; परंतु राग आत्मा से भिन्न है, यह गले उतरना तनिक कठिन लगता है–जरा समझाइये?

उत्तर– चैतन्य में अंदर गया अर्थात् पुण्य-पापभाव का साक्षी हो गया, तब वह भाव से भिन्न है, काल से भिन्न है, और क्षेत्र से भी भिन्न है; वस्तु भिन्न ही है, आत्मा तो अकेला ज्ञानघन चैतन्यपुंज ही है।

प्रश्न– भगवान आत्मा आनंदरूप है—इसप्रकार आत्मा के गुणों का विशद् व्याख्यान आप करते हो, परंतु वह भगवान चला कहाँ गया-यह तो बतलाइये ?

उत्तर– भगवान तो जहाँ है वहाँ ही है। परंतु इस भगवान का इस जीव को भान नहीं है, इसलिये दृष्टि में आता नहीं। स्वयं भगवानस्वरूप कारणपरमात्मा, ऐसा जिसको हृदय में जमता है उसी को कारणपरमात्मा है। परंतु जिसको ऐसा जमता ही नहीं कि मैं परमात्मास्वरूप हूँ, उसके लिये कारणपरमात्मा कहाँ है? उसको तो राग और अल्पज्ञता ही है। जिसको कारणपरमात्मा का विश्वास जमता है, उसी को तो कार्यरूप में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रकट होता है।

प्रश्न– तत्त्व का निर्णय करने में कितने वर्ष लगते होंगे ?

उत्तर– कार्य हो जाये तो अंतर्मुहूर्त में ही हो जाये अन्यथा पूरा जीवन ही निर्णय करने में व्यतीत हो जाये। इसमें काल का कोई प्रश्न ही कहाँ है ? वीर्य को विपरीत परिणमन से अवरुद्ध करके स्वरूप-सन्मुख करे तो कार्य हुए बिना रहे नहीं। जितना कारण उपस्थित करना चाहिये उतना जब तक नहीं जुटावे तब तक कार्य संपन्न नहीं हो सकता।

प्रश्न– आत्मा की रुचि हो और सम्यग्दर्शन न हो सके तो अग्रिम भव में होगा क्या ?

उत्तर– आत्मा की सच्ची रुचि हो उसे सम्यग्दर्शन होगा ही-अवश्य होगा। यथार्थरुचि और लक्ष होने पर सम्यग्दर्शन न हो, यह तीनकाल में नहीं हो सकता। वीर्य में हीनता नहीं होनी चाहिये, वीर्य में उत्साह और निःशंकता आनी चाहिये। कार्य होगा ही—इसप्रकार हमारे निर्णय में आना चाहिये।

प्रश्न– शास्त्रों में कहीं तो परीक्षाप्रधानी बनने के लिये कहा और कहीं आज्ञानुसारी रहने का निर्देश दिया। परीक्षा किये बिना निर्णय होता नहीं—अब हमें क्या करना ?

उत्तर– परीक्षा तो करना, परंतु जिन-आज्ञा को मुख्य रखकर करना। सर्वज्ञ की आज्ञा मानकर परीक्षा करना, अकेली परीक्षा करने जाओगे तो भ्रष्ट हो जाओगे। जिन शासन में कथित पदार्थों के स्वभाव की गंभीरता, क्षेत्रस्वभाव की गंभीरता, काल-स्वभाव की

गंभीरता, अनंतभावों के स्वभाव की गंभीरता—इन सूक्ष्म स्वभावी पदार्थों को जिन-आज्ञा से प्रमाण करना। अल्पबुद्धि का धारक जीव अकेली परीक्षा करने जायेगा तो जिनमत से च्युत हो जाने का बड़ा दोष होगा। जिन-आज्ञा को मुख्य रखकर बने जितनी अर्थात् जितनी हो सके उतनी परीक्षा करने में दोष नहीं है। अकेली आज्ञा से ही माने और परीक्षा करे ही नहीं तो भी निर्णय सच्चा नहीं हो सकता, और सच्चा निर्णय हुए बिना किसी अन्य के द्वारा की गई कुतर्कपूर्ण वार्ता सुनकर श्रद्धान बदल भी सकता है। इसलिये परीक्षा करके निर्णय तो अवश्य करना, परंतु जिन-आज्ञा को मुख्य रखकर करना।

वीतराग-विज्ञान पाठशालाओं की निरीक्षण रिपोर्ट

श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड के निरीक्षक पंडित रमेशचंदजी जैन, इटावावालों ने माह नवंबर १९७९ में बंडाबलई में चल रही दो पाठशालाओं तथा बरायठा, बकस्वाहा, हीरापुर, भगवां, घौरा, ललितपुर, भिंड, इटावा में चल रही पाठशालाओं का निरीक्षण किया।

इस क्षेत्र में घौरा (छतरपुर-म.प्र.) की पाठशाला प्रगति के पथ पर है। इसकी व्यवस्था व छात्रों की अध्ययनशीलता की निरीक्षक महोदय ने प्रशंसा की है।

आपकी प्रेरणा से ही सानेधा (सागर-म.प्र.), नयामंदिर ललितपुर तथा तालबेहट में नवीन पाठशालाएँ खुलीं।

दरगुवां (छतरपुर), दरगुवां (टीकमगढ़), बड़ामलहरा, बड़ागाँव, लार, डिकौली आदि जगहों पर पाठशालाएँ प्रारंभ करने हेतु आश्वासन प्राप्त हुए हैं। इनके शीघ्र ही प्रारंभ होने की संभावना है।

— मंत्री, भारतवर्षीय वी० वि० पाठशाला समिति

श्री टोडरमल दि० जैन सिद्धांत महाविद्यालय के नए भवन का शिलान्यास-समारोह सानंद संपन्न

जयपुर (राज०) :- स्थानीय टोडरमल स्मारक भवन में दिनांक १ दिसंबर से ३ दिसंबर ७९ तक श्री टोडरमल दि० जैन सिद्धांत महाविद्यालय के नवीन भवन का शिलान्यास-समारोह विविध कार्यक्रमों के साथ सानंद संपन्न हुआ। तीनों दिन नियमित रूप से बाहर से पधारे विद्वद्वर्य पंडित लालचंदजी मोदी राजकोट, सिद्धांताचार्य पंडित फूलचंदजी शास्त्री वाराणसी, सिद्धांताचार्य पंडित कैलाशचंदजी शास्त्री वाराणसी, पंडित जगन्मोहलालजी शास्त्री कटनी, पंडित जुगलकिशोरजी 'युगल' कोटा आदि के प्रवचन तथा तत्त्वचर्चा से हजारों धर्म-पिपासुओं ने धर्म लाभ लिया। इसके पूर्व दिनांक २३-११-७९ से ३०-११-७९ तक शहर के विभिन्न मंदिरों में पंडित बाबूभाई मेहता एवं पंडित ज्ञानचंदजी विदिशावालों के आध्यात्मिक प्रवचनों से स्थानीय समाज लाभान्वित हुई।

शिलान्यास-समारोह में बाहर से लगभग ५०० भाई-बहनों ने पधारकर लाभ लिया। टोडरमल स्मारक भवन के अतिरिक्त अन्य ४-५ स्थानों पर ठहरने की समुचित व्यवस्था की गई थी। शहर के अनेक स्थानों से कार्यक्रमों में आने-जाने वालों के लिये बसों की नि:शुल्क व्यवस्था की गई थी, जिससे स्थानीय समाज ने हजारों की संख्या में भाग लेकर लाभ लिया। बाहर से पधारे सभी अतिथियों को स्मारक भवन में भोजन की नि:शुल्क व्यवस्था थी। प्रत्येक कार्यक्रम में १०५×६५ फुट लंबा-चौड़ा प्रवचन हॉल खचाखच भरा रहता था।

शिलान्यास-कार्यक्रम के अध्यक्षीय भाषण में राजस्थान के स्वास्थ्यमंत्री श्री त्रिलोकचंदजी जैन ने विश्वास व्यक्त किया कि—''युग की महती आवश्यकता—नैतिक और धार्मिक शिक्षा के क्षेत्र में इस महाविद्यालय का बहुत बड़ा योगदान रहेगा। यहाँ से सैकड़ों व्युत्पन्न विद्वान तैयार होकर देश-विदेश में जैन तत्त्वज्ञान का व्यापक प्रचार व प्रसार करेंगे।'' उन्होंने अपने विश्वास का आधार बताते हुए कहा कि—''ढाई वर्ष पूर्व इसके उद्घाटन अवसर पर राजस्थान के मुख्यमंत्री श्री भैरोंसिंहजी शेखावत के साथ मैं भी आया था। ढाई वर्ष के अल्पकाल में ही इसकी प्रगति देखकर संस्था के भविष्य का अनुमान लगाया जा सकता है।''

उक्त समारोह के मुख्य अतिथि थे सेठ श्री पन्नालालजी गंगवाल तथा शिलान्यासकर्ता थे-पंडित लालचंदभाई मोदी, सेठ श्री रतनलालजी गंगवाल एवं सेठ श्री शांतिभाई जवेरी। इस अवसर पर अपने विचार व्यक्त करते हुए पंडित लालचंदभाई मोदी ने रहस्योद्घाटन किया कि—''मैं इस ट्रस्ट का ट्रस्टी तभी बना जब मेरी यह बात स्वीकार कर ली गई कि तीर्थों की रक्षा के साथ-साथ यह ट्रस्ट जीवंत-तीर्थ जिनवाणी की रक्षा व प्रचार-प्रसार करेगा। यह महाविद्यालय उसी दिशा में उठाया गया एक महत्त्वपूर्ण कदम है जिसके प्रतिभाशाली छात्र एवं उसकी द्रुतगामी प्रगति देखकर मुझे विश्वास हो गया है कि मेरी भावना अवश्य सफल होगी।''

समारोह के विशिष्ट अतिथि साहू अशोककुमारजी ने भी महाविद्यालय के कार्यकलापों को देखकर हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त की और कहा कि—''आप इस महान कार्य को सीमित न रखिए। जब आपको प्रतिभाशाली छात्र मिलते हैं तो फिर प्रतिवर्ष मात्र १० ही छात्र भर्ती न करके कम से कम १५ कीजिए। आर्थिक कठिनाई की कोई चिंता न कीजिए, साहू जैन ट्रस्ट आपके साथ है; उसका पूरा-पूरा सहयोग आपको सदैव मिलता रहेगा।''

इस अवसर पर समारोह में पधारे अन्य आगंतुक विद्वानों एवं श्रीमन्तों में पंडित खुशालचंदजी गोरावाला, पंडित प्रकाशचंदजी 'हितैषी', प्रो० जमनालालजी, ब्रह्मचारी माणिकचंदजी चंवरे, पंडित माणिकचंदजी भिसीकर, श्री सुकुमारचंदजी, श्री नेमीचंदजी जैन (साहू जैन ट्रस्ट), सेठ प्रेमचंदजी जैन (जैना वाच कंपनी), स० सिं० धन्यकुमारजी, सेठ मीठालालजी, सेठ गजानंदजी पाटनी, सेठ कांतिभाई मोटाणी तथा सेठ चिमनभाई शाह, श्री अभिनंदनकुमारजी टडैया, सेठ जवाहरलालजी, श्री हरकचंदजी विलाला, श्री भगतरामजी, श्री माणिकलाल आर० गाँधी आदि प्रमुख हैं।

समारोह में उपस्थित महानुभावों की ओर से महाविद्यालय के भवन-निर्माण के लिये लगभग ३.५ लाख के वचन प्राप्त हुए तथा श्री सीमंधर जिनालय पूजन ध्रुव फंड में ७,६७६) रुपये प्राप्त हुए। इसके साथ ही आत्मधर्म के १४ आजीवन तथा सैकड़ों वार्षिक ग्राहक बनाये गये। लगभग २०००) रुपये का सत्साहित्य बिका एवं वीतराग-विज्ञान समिति के लिये भी ४०००) रुपये का अनुदान प्राप्त हुआ। जैनपथ प्रदर्शक के भी अनेक ग्राहक बनाये गये।

इस कार्यक्रम के अतिरिक्त इस अवसर पर कुंदकुंद कहान तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट का पंचवर्षीय अधिवेशन, टोडरमल सिद्धांत महाविद्यालय का त्रिवार्षिकोत्सव, अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन का कार्यकर्ता सम्मेलन एवं टोडरमल जयंती महोत्सव के कार्यक्रम भी सानंद संपन्न हुए, जिनके समाचार पृथक् से दिये जा रहे हैं। — **अखिल बंसल**

श्री कुंदकुंद कहान तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट का पंचवर्षीय अधिवेशन संपन्न

जयपुर :- श्री टोडरमल दिगंबर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के नवीन भवन के शिलान्यास के अवसर पर दिनांक १ व २ दिसंबर को कुंदकुंद कहान तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट का पंचवर्षीय अधिवेशन दो बैठकों में संपन्न हुआ। इसका उद्घाटन करते हुए श्री प्रेमचंदजी जैन (जैना वाच कंपनी, दिल्ली) ने अल्पकाल में हुए इसके कार्यों और समाज के द्वारा प्राप्त सहयोग की चर्चा करते हुए संस्था के उज्ज्वल भविष्य की मंगल कामनाऐं प्रगट कीं। समारोह के मुख्य अतिथि श्री साहू अशोककुमारजी जैन ने इस अवसर पर बोलते हुए कहा—''आज के समय में पैसा देना कोई बड़ी बात नहीं है; बड़ा कार्य है अच्छे कार्यकर्ता और संचालक का प्राप्त होना, जो कि इस संस्था को प्राप्त है। मुझे विश्वास है कि आपके इस बढ़ते हुए कार्य से समाज को शक्ति और सन्मार्ग प्राप्त होगा।''

अध्यक्ष पद से बोलते हुए पंडित बाबूभाई मेहता ने इस ट्रस्ट के उद्भव व विकास की कहानी विस्तार से सुनाई और समाज से प्राप्त सहयोग के लिये बहुत-बहुत धन्यवाद दिया। द्वितीय बैठक के मुख्य अतिथि श्री नेमीचंदजी जैन ने कहा—''पूज्य कानजीस्वामी का ही पुण्य-प्रताप है कि आज यहाँ रुपया पानी की तरह बरसता है और उनके ही प्रताप से इस विद्यालय को ऐसे सुयोग्य छात्र मिले हैं, जबकि अन्य विद्यालयों को तो छात्र मिलते ही नहीं हैं।'' विशेष अतिथि श्री गजानंदजी पाटनी ने विश्वास व्यक्त किया कि यह ट्रस्ट अपने उद्देश्य—तीर्थों व जीवंत तीर्थ जिनवाणी की सुरक्षा में निश्चित ही सफल होगा।

इनके अतिरिक्त श्री स० सिं० धन्यकुमारजी कटनी, ब्रह्मचारी माणिकचंदजी कारंजा, प्रो० खुशालचंदजी गोरावाला, पंडित भंवरलालजी न्यायतीर्थ जयपुर आदि ने भी ट्रस्ट की गतिविधियों के प्रति संतोष व्यक्त करते हुए और भी अनेक काम हाथ में लेने के सुझाव दिये। विशेषकर प्रो० जमनालालजी इंदौर ने काम को विकेन्द्रित करने पर जोर देते हुए कहा—''मैं

देखता हूँ कि सभी काम बाबूभाई मेहता, डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल और नेमीचंदजी पाटनी के इर्द-गिर्द ही घूमते हैं।''

अंत में ट्रस्ट के अध्यक्ष पंडित बाबूभाई मेहता की ओर से डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल ने समागत सुझावों को यथायोग्य लागू करने का आश्वासन देते हुए प्रवक्ताओं द्वारा व्यक्त सुझावों का समुचित स्पष्टीकरण किया। इस अवसर पर कुंदकुंद कहान तीर्थ सुरक्षाट्रस्ट का पंचवर्षीय विवरण भी मुख्य अतिथियों को भेंट किया गया तथा सभी को वितरित किया गया। इनके पूर्व दिनांक ३०-११-७९ को ट्रस्टियों की मीटिंग हुई थी, जिसमें अनेक महत्त्वपूर्ण निर्णय लिये गये।

—धन्यकुमार बेलोकर, महामंत्री

श्री टोडरमल दि० जैन सिद्धांत महाविद्यालय का त्रिवार्षिकोत्सव संपन्न

जयपुर :- २ दिसम्बर, ७९ को भवन शिलान्यास-समारोह के अवसर पर श्री टोडरमल दि० जैन सिद्धांत महाविद्यालय का त्रिवार्षिकोत्सव भी मनाया गया। जिसका संचालन करते हुए महाविद्यालय के मंत्री श्री नेमीचंदजी पाटनी ने महाविद्यालय एवं टोडरमल स्मारक भवन में संचालित विभिन्न गतिविधियों का विस्तार से परिचय दिया। तत्पश्चात् इस समारोह का उद्घाटन साहू अशोककुमारजी ने किया। अपने उद्घाटन भाषण में उन्होंने महाविद्यालय के छात्रों से जर्मन आदि विदेशी भाषाओं को सीखने का अनुरोध किया जिससे कि तत्त्व का प्रचार व प्रसार विदेशों में भी किया जा सके।

पंडित कैलाशचंदजी सिद्धांतशास्त्री ने विद्यालयों के अपने चालीसवर्षीय संचालन के आधार पर मार्गदर्शन करते हुए विद्यालय के संचालन में आनेवाली अनेक कठिनाईयों के प्रति आगाह किया तथा कहा कि—''सबसे बड़ी समस्या विद्वानों की बेरोजगारी की। पेट भरने को पैसा न मिले और इज्जत भी न मिले—ऐसी हालत में कौन पंडित बनना चाहेगा। इसी कारण जब हमारे विद्यालय को छात्र मिलने बंद हो गए तो हमने उन्हें लौकिक शिक्षा की सुविधाएँ दे दीं—जिससे विद्यालय तो भर गए, किंतु जैनधर्म की पढ़ाई के प्रति उपेक्षा बढ़ती गई। फल यह निकला कि लौकिक शिक्षा पाकर हमारे छात्र सरकार की बड़ी-बड़ी नौकरियों में चले गये और उनका लाभ समाज को प्राप्त नहीं हुआ। अब वे लोग समाज में आना भी पसंद नहीं करते। जब उनसे कुछ कहते हैं तो कुछ तो सुनते हैं, पर कुछ सुनना भी पसंद नहीं करते। अत: हमें

फिर यह निर्णय लेना पड़ा है कि हम तो सिर्फ जैनदर्शन और संस्कृत की ही पढ़ाई करायेंगे।'' उन्होंने जानना चाहा कि इस महाविद्यालय ने अपने स्नातकों को रोजगार देने की क्या व्यवस्था की है ? पंडित जगन्मोहनलालजी ने भी उनसे अपनी सहमति प्रगट करते हुए महाविद्यालय को अपनी शुभकामनाएँ अर्पित कीं। दिगम्बर जैन संस्कृत कॉलेज के मंत्री श्री कपूरचंदजी पाटनी ने भी टोडरमल दिगंबर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के संचालकों के प्रति आभार प्रगट करते हुए कहा कि—''इस महाविद्यालय के छात्रों ने बोर्ड व विश्वविद्यालय में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करके अपना और अपने विद्यालय का गौरव तो बढ़ाया ही है; साथ ही हमारे महाविद्यालय का गौरव भी बढ़ाया है।''

महाविद्यालय के निदेशक डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल ने महाविद्यालय की भावी योजनाओं पर विस्तृत प्रकाश डालते हुए बताया कि—''इसके संचालकों ने इन सब बातों का ध्यान रखते हुए और उनकी समुचित व्यवस्था करके ही यह विद्यालय खोला है।'' ट्रस्ट के अध्यक्ष पंडित बाबूभाई मेहता ने भी बताया कि—''अभी भी मेरे पास बीसों स्थानों की मांग है जहाँ पर अच्छे वेतन पर विद्वानों की चाह है।''

अंत में स०सि० धन्यकुमारजी ने अध्यक्ष पद से बोलते हुए कहा कि—''हमारी विलुप्त स्वाध्याय परंपरा को पूज्य कानजीस्वामी ने बड़े जोर-शोर से चलाया है। जैसा कि मुझे ज्ञात हुआ कि इस महाविद्यालय में प्रवेश के लिए सैकड़ों प्रार्थना-पत्र आते हैं, उनमें से मैरिट के आधार पर योग्यतम छात्रों का चुनाव किया जाता है, यह एक गौरव की बात है। गुरु गोपालदासजी बरैया और वर्णीजी ने धार्मिक शिक्षा के क्षेत्र में महान कार्य किया है। उसी कार्य को यह महाविद्यालय आगे बढ़ा रहा है। इस कार्य में समाज के योग्यतम विद्वान भारिल्ल बंधु जुटे हुए हैं और उनकी पीठ पर बाबूभाई, गोदीकाजी और नेमीचंदजी पाटनी जैसे लोगों का हाथ है।''

इसके पूर्व संस्था के व्याकरण-अध्यापक श्री परमेश्वरजी मिश्र का माल्यार्पण और सिरोपाव देकर संस्था के अधिष्ठाता श्री रावजीभाई द्वारा स्वागत किया गया तथा ब्रह्मचारी हेमचंदजी जैन द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित लघु जैनसिद्धांत प्रवेशिका का विमोचन साहू अशोककुमारजी ने किया।

— अभय जैन

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन का कार्यकर्ता-सम्मेलन संपन्न

जयपुर :- शिलान्यास-समारोह के अवसर पर दिनांक २ दिसंबर, ७९ को अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन का कार्यकर्ता-सम्मेलन आयोजित किया गया। सम्मेलन की अध्यक्षता श्री चिमनभाई शाह बम्बई ने की। श्री साहू अशोककुमारजी समारोह के मुख्य अतिथि थे। फैडरेशन के अध्यक्ष ब्रह्मचारी श्री जतीशभाई ने समागत अतिथियों का माल्यार्पण द्वारा स्वागत किया। सम्मेलन का उदघाटन सेठ श्री कांतिभाई मोटानी ने किया। उन्होंने अपने उद्घाटन भाषण में फैडरेशन द्वारा किये गये कार्यों की सराहना करते हुए प्रगति की कामना है। श्री अभयकुमारजी जैन ने फैडरेशन की संक्षिप्त रिपोर्ट प्रस्तुत की। तत्पश्चात् श्री हरकचंदजी बिलाला, ब्रह्मचारी जतीशचंदजी एवं श्रीमती सरोज जैन ने अपने-अपने विचार व्यक्त किये।

इस अवसर पर डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल, श्री जुगलकिशोरजी 'युगल', श्री नेमीचंदजी जैन (साहू जैन ट्रस्ट) तथा श्री साहू अशोककुमारजी ने फैडरेशन की उपयोगिता पर चर्चा करते हुए उसके द्वारा संचालित गतिविधियों की मुक्तकंठ से प्रशंसा की। फैडरेशन द्वारा प्रकाशित स्मारिका 'दिव्यालोक' का विमोचन श्री साहू अशोककुमारजी जैन ने किया तथा साहित्य प्रकाशन हेतु २,१००) रुपया प्रदान करने की घोषणा की। इसी मौके पर अन्य सज्जनों द्वारा भी विभिन्न राशियाँ प्राप्त हुईं, इस प्रकार फैडरेशन को कुल ६,३००) रुपये अनुदान स्वरूप प्राप्त हुए। स्मारिका के प्रधान संपादक एवं फैडरेशन के महामंत्री श्री अखिल बंसल ने समागत विशिष्ट अतिथियों एवं विद्वानों को स्मारिका भेंट की।

इसके पूर्व मध्याह्न में फैडरेशन की एक अनौपचारिक बैठक का आयोजन किया गया था, जिसमें विभिन्न शाखाओं से पधारे हुए कार्यकर्ताओं ने फैडरेशन के व्यापक प्रचार व प्रसार हेतु आवश्यक प्रस्ताव रखे। उक्त प्रस्तावों पर विस्तृत चर्चा की गई तथा आवश्यक प्रस्तावों को सर्वानुमति से पारित कर उनकी रात्रि के सम्मेलन में महामंत्री द्वारा घोषणा की गई। सम्मेलन में विभिन्न शाखाओं से लगभग ८० कार्यकर्ताओं ने भाग लिया।

टोडरमल जयंती समारोह उत्साहपूर्वक मनाया

जयपुर :- दिनांक ३-१२-७९ को स्थानीय टोडरमल स्मारक भवन में टोडरमल जयंती महोत्सव बड़े ही उत्साहपूर्वक मनाया गया। समारोह का उद्घाटन करते हुए प्रसिद्ध

विद्वान पंडित जगन्मोहनलालजी सिद्धांतशास्त्री कटनी ने उन्हें आगम और अध्यात्म का एक महान पंडित बताते हुए उनके टीका-ग्रंथों और मोक्षमार्गप्रकाशक को आर्ष ग्रंथों के समान प्रामाणिक बताते हुए उनके गंभीर अध्ययन की प्रेरणा दी।

मुख्य अतिथि पद से बोलते हुए पंडित कैलाशचंदजी सिद्धांतशास्त्री बनारस ने कहा कि—''विद्वान को कितना संतुलित होना चाहिए-यह मैंने मोक्षमार्गप्रकाशक पढ़कर ही सीखा है।'' उन्होंने अपनी बात की पुष्टि में मोक्षमार्गप्रकाशक के अनेक अंश पढ़कर भी सुनाये। अंत में महाविद्यालय के छात्रों की ओर इंगित करते हुए उन्होंने कहा कि—''पंडित बनो, पर पंडित टोडरमल जैसे पंडित बनो। पक्ष में जाओ, पर आगम के पक्ष में जाओ, किसी अन्य के पक्ष में नहीं।'' टोडरमल भवन के संचालकों की ओर संकेत करते हुए उन्होंने कहा—''आपने उनकी स्मृति में इतना बड़ा स्मारक भवन बनाकर और उनकी अमरकृति मोक्षमार्गप्रकाशक को घर-घर पहुँचकर उनका सच्चे अर्थों में मूल्यांकन किया है।'' अंत में—''मरते-मरते किसी भी तरह मैं टोडरमल बन जाऊँ''—इस पवित्र भावना के साथ उन्होंने अपने श्रद्धासुमन समर्पित किये।

समारोह के अध्यक्ष सिद्धांताचार्य पंडित फूलचंदजी ने बहुत विस्तार से अपनी भावनाओं को व्यक्त करते हुए कहा कि—''पंडित टोडरमल सच्चे अर्थों में आचार्यकल्प थे।''

इसके बाद अनेक वक्ताओं ने पंडितजी के प्रति अपने भाषणों और काव्यपाठ द्वारा श्रद्धांजलियाँ समर्पित कीं—जिनमें ब्रह्मचारी पंडित माणिकचंदजी चंवरे न्यायतीर्थ, पंडित धन्यकुमारजी भौंरे, पंडित प्रकाशचंदजी 'हितैषी', डॉ० कस्तूरचंदजी कासलीवाल, पंडित भंवरलालजी न्यायतीर्थ, पंडित अनूपचंदजी न्यायतीर्थ, पंडित मिलापचंदजी न्यायतीर्थ, पंडित बंशीधरजी शास्त्री एम.ए., श्री गोकुलचंदजी 'सरोज' आदि प्रमुख थे।

समारोह का संचालन डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल ने किया। संचालन करते हुए बीच-बीच में डॉ० भारिल्ल ने पंडित टोडरमलजी की भाषा, भाव एवं शैलीगत अनेक विशेषताओं का उल्लेख किया।

पंडित ज्ञानचंदजी द्वारा धर्मप्रभावना

दिनांक ३-११-७९ से २२-११-७९ तक पंडित ज्ञानचंदजी विदिशावालों के ग्वालियर, आगरा, एटा, एत्मादपुर, शिकोहाबाद, फिरोजाबाद, सिरसागंज तथा जसवंतनगर में

तीनों समय आध्यात्मिक प्रवचन आयोजित किये गये। समाज में आपके प्रवचनों से महती धर्मप्रभावना हुई। आपके साथ ब्रह्मचारी रवीन्द्रजी एटा तथा बाबूलालजी अशोकनगर वालों के भक्ति के कार्यक्रम रोचक रहे। इस अवसर पर श्री कुंदकुंद कहान तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट को पूर्व में लिखायी गयी रकमों में से ५८,४३३) रुपया नकद प्राप्त हुआ तथा ४७,४२९) रुपये के नये वचन प्राप्त हुए। इन वचनों में से भी १९,७२८) रुपये नगद प्राप्त हुए। स्थान-स्थान पर युवा फैडरेशन के कार्यकर्ताओं ने रुचिपूर्वक कार्यक्रमों में भाग लेकर लाभ लिया।

महीदपुर (म.प्र.) :- अष्टाह्निका पर्व पर करेली से पंडित ज्ञानचंदजी पधारे। आपके मार्मिक प्रवचनों से समाज ने लाभ लिया। आपके सान्निध्य में युवा फैडरेशन की नवीन शाखा गठित की गई।

मौ (म०प्र०) :- अष्टाह्निका पर्व पर ब्रह्मचारी नित्यानंदजी के निर्देशन में नंदीश्वरद्वीप पूजन-मंडल विधान पंडित वीरचंदजी के द्वारा संपन्न कराया गया। प्रतिदिन पंडित निर्मलकुमारजी के प्रवचन एवं पंडित वीरचंदजी द्वारा कक्षाओं का आयोजन किया गया। यहाँ पर वीतराग-विज्ञान पाठशाला भी प्रारंभ की गई। **— पूरनचंद जैन**

बिजौलिया (राज०) :- भोपाल से ब्रह्मचारी हेमराजजी पधारे। २८-१०-७९ से ४-११-७९ तक नंदीश्वरद्वीप मंडल विधान पूजा चली तथा पंचास्तिकाय, मोक्षमार्गप्रकाशक, परमात्मप्रकाश, ज्ञानार्णव तथा छहढाला आदि ग्रंथों पर आपके प्रवचन एवं कक्षाओं का आयोजन किया गया। **— अशोक लुहाड़िया**

परीक्षातिथि निश्चित

श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड, जयपुर की शीतकालीन परीक्षाएँ दिनांक २, ४ व ५ फरवरी १९८० को ली जावेंगी। विस्तृत कार्यक्रम, रोल नंबर तथा अन्य परीक्षोपयोगी सामग्री के साथ शीघ्र भेजा जाएगा। जो पाठशालाएँ अभी तक प्रवेश फार्म भरकर न भेज सकी हों, वे विलंब का समुचित कारण बताकर शीघ्र भरकर भेज दें।

आवश्यक सूचना

श्री कुंदकुंद कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट के समान ही निम्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु ८ सितंबर, ७९ को श्री कुंदकुंद कहान दि० जैन सर्वोदय ट्रस्ट की स्थापना की गई है।

ट्रस्ट के उद्देश्य निम्नानुसार हैं:-

१. अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकांत, स्याद्वाद आदि लोकोपयोगी सिद्धांतों का जन-जन में प्रचार करना।

२. भारत सरकार द्वारा मान्यताप्राप्त प्राचीन तीर्थों एवं मंदिरों का जीर्णोद्धार करना।

३. ऐतिहासिक स्थलों पर आनेवाले पर्यटकों के ठहरने की उत्तम व्यवस्था करना।

४. प्राचीन ऐतिहासिक पांडुलिपियों एवं साहित्य की शोध, सुरक्षा एवं प्रकाशन की व्यवस्था करना।

५. स्कूल, कॉलेज तथा पाठशाला आदि के माध्यम से शिक्षा का प्रचार करना।

६. चिकित्सालय, औषधालय आदि के माध्यम से जनसाधारण को चिकित्सा-सुविधाएँ उपलब्ध कराना।

७. प्याऊ आदि अन्य सार्वजनिक उपयोगी सुविधाएँ उपलब्ध कराना।

उक्त ट्रस्ट आयकर से मुक्त है। ट्रस्ट को इन्कमटैक्स की धारा ८०जी के अंतर्गत आयकर-मुक्त प्रमाण-पत्र प्राप्त हो चुका है, जिसका नं० दिल्ली, आई० टी० II/टी० ई०/१०७/७९/४-७० दिनांक २८-९-१९७९ है।

समस्त धर्मप्रेमी बंधुओं से अनुरोध है कि उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति हेतु अधिक से अधिक सहयोग देकर आयकर की छूट एवं धर्मलाभ उठाते हुए अनुगृहीत करें।

दानराशि निम्न पते पर भेजें:-

सुरेन्द्रकुमार जैन
राजदीप, १२ न्यू कॉलोनी, जैन मंदिर के पास
मॉडल बस्ती, दिल्ली-११०००५

पाठकों के पत्र

छतरपुर (म०प्र०) से श्री नेमीचंदजी जैन, टेलीफोन इंसपैक्टर लिखते हैं:-

विगत चार वर्षों से आत्मधर्म का नियमित पाठक हूँ। पूज्य कानजीस्वामी की जिनवाणी के प्रति अपूर्व लगन एवं श्रद्धा के कारण आज जैन साहित्य घर-घर में प्रवेश कर गया है। जैन साहित्य आज इतना सस्ता एवं सुलभ हो गया, इसके लिये स्वामीजी साधुवाद के पात्र हैं।

जिनवाणी के प्रति श्रद्धा तो मुझे शैशवकाल से ही थी, किंतु स्वामीजी की द्रव्यदृष्टिमयी आत्मवाणी ने जीवन को सम्यक् गन्तव्य प्रदान किया है। अनेक जैनग्रंथों का स्वाध्याय करने के बावजूद भी सम्यक् लक्ष्य के प्रति भूल-भुलैया में था, किंतु स्वामीजी की दिव्यज्ञान-किरणों से भूल-भुलैया का तिमिर क्रमशः अस्ताचल को जा रहा है। मुझे शब्दकोश में प्रशंसा के शब्द ही नहीं मिल रहे, जिनसे कि मैं स्वामीजी के प्रति आभार व्यक्त कर सकूँ।

बम्बई (महाराष्ट्र) से श्री नरेन्द्र जे० शाह लिखते हैं:-

आत्मधर्म खूब सुंदर हो गया है। एक बार पढ़ने पर बार-बार पढ़ने को मन करता है। सभी सामग्री खूब सुंदर लगती है। सितंबर माह के अंक में पूज्य गुरुदेव का इंटरव्यू 'क्रमबद्धपर्याय' खूब सुंदर बन पड़ा है। जब-जब डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल ने पूज्य गुरुदेव के इंटरव्यू लेकर प्रश्न-उत्तर रूप में लेखनीबद्ध किये हैं, तब-तब वे रोचक बन पड़े हैं, उन्हें पढ़ने पर विषय में काफी रुचि उत्पन्न हो जाती है।

महीदपुर (म०प्र०) से श्री विजय सोगानी लिखते हैं:-

डॉ० हुकमचंद भारिल्ल नई पीढ़ी के प्रबुद्ध, लगनशील एवं उच्चकोटि के विद्वान हैं। उन्होंने धर्म के दशलक्षण, क्रमबद्धपर्याय आदि अनेक विषयों पर अपने जो विचार प्रगट किये हैं—वे आज के समाज के लिये विशेषकर नवयुवकों के लिये बहुत ही उपयुक्त एवं प्रेरणास्पद हैं।

चंद्रपुर (महा०) से श्री बाबूरावजी बंड लिखते हैं:-

आत्मधर्म, अध्यात्मरस का रसिक एवं वैराग्य रस ओत-प्रोत मासिक पत्र मुझे बहुत प्रिय लगता है।

करहल (उ०प्र०) से श्री अरविन्दकुमारजी जैन, प्राध्यापक, जैन इंटर कालेज लिखते हैं:-

वस्तुतः आत्मधर्म पत्रिका तत्त्वजिज्ञासु जीवों को उनके चिरविस्मृत आत्मस्वरूप को दिखाने के लिये मणिदीपवत् है जो बाह्य वातावरण से सर्वथा अप्रभावित रहकर उन्हें सदा सहायक रहती है।

नई दिल्ली से डॉक्टर दामोदर शास्त्री, अध्यक्ष, जैनदर्शन विभाग, लालबहादुर शास्त्री केंद्रीय संस्कृत विद्यापीठ लिखते हैं:-

आपके पत्र की सामग्री ज्ञानवर्द्धक है और आगम के रहस्य को समझने में सहायक कुंजी है। मैं बड़ी उत्सुकता से इसे पड़ता हूँ।

बीस वर्ष पहले

[इस स्तंभ में आज से बीस वर्ष पहले आत्मधर्म (हिंदी) मे प्रकाशित महत्त्वपूर्ण अंशों को प्रकाशित किया जाता है।]

सिद्ध भगवान की सच्ची पहिचान

भाई, सिद्ध भगवान तो हमारा कुछ नहीं करते—यह बात सच है; किंतु सिद्ध भगवान को जानने से हमें निजस्वरूप की पहिचान का लाभ होता है। अहा! ऐसे सिद्ध भगवान... जिनके देह नहीं, इंद्रियाँ नहीं, राग नहीं, और फिर भी जो परमसुखी हैं; इसलिए राग में या इंद्रिय-विषयों में सुख नहीं है, किंतु आत्मा के स्वभाव में ही सुख है। इसप्रकार आत्मस्वभाव की प्रतीति के स्वसन्मुख होना ही सिद्ध भगवान की पहिचान का फल है।

जैसे—हम दर्पण में देखें तो दर्पण हमारा कुछ नहीं कर देता; किंतु दर्पण में देखने से अपना जैसा रूप है, वैसा प्रतीति में आ जाता है। उसीप्रकार सिद्ध भगवान दर्पण के समान हैं, वे तो हमारा कुछ नहीं कर देते; किंतु उनकी पहिचान होने पर अपना शुद्धस्वरूप यथावत्—ज्यों का त्यों प्रतीति में आ जाता है और यही महान अपूर्व लाभ है।

वहाँ भक्ति के कारण ऐसा भी कहा जाता है कि अहा! सिद्ध भगवान मुझ पर प्रसन्न हुए, सिद्ध भगवान ने मेरा परमहित किया; किंतु धर्मात्मा को भान है कि सिद्ध भगवान तो निजस्वरूप के ही कर्ता हैं, पर के कर्ता नहीं हैं। वंदित्तु सव्वसिद्धे.... इत्यादि प्रकार से अपने अंतर में सिद्धों की स्थापना करके जो सिद्धपद को साधते हैं, वे आरोप से ऐसा कहते हैं कि सिद्ध भगवान हमारे सिद्धपद के कर्ता हैं; किंतु भगवान को विकल्प नहीं है कि मैं दूसरों का निमित्त होऊँ.... भगवान तो निजस्वरूप के ही कर्ता हैं।

संसारदशा में जीव को कर्ता कहा, उसमें तो विकार का तथा कर्म का कर्तृत्व लिया था; किंतु सिद्धभगवंतों को विकार के कर्तृत्व का सर्वथा अभाव हो गया है, विकाररूप परिणमन उनको होता ही नहीं; इसलिए निमित्तरूप से कर्म के कर्तृत्व का भी उनके अभाव है। अपने शुद्धज्ञान आनंदस्वरूप से परिणमित होते हैं, उसी का कर्तापना है। 'परिणमन' कोई उपाधि नहीं, परिणमित होना तो द्रव्य का स्वरूप ही है; निजस्वरूप होने से वह सिद्धदशा में भी रहता है। सिद्ध दशा में भी आत्मा अन्य द्रव्यों के साथ एकमेक होकर परिणमन नहीं करता; किंतु अन्य समस्त द्रव्यों से असाधारण अर्थात् भिन्न ऐसे निजस्वरूप से ही परिणमित होता है; इसप्रकार सिद्धदशा में अन्य द्रव्यों से असाधारण ऐसे निजस्वरूप को रचनेरूप कर्तृत्व जानना।

— आत्मधर्म, वर्ष १५, अंक १७४, अक्टूबर १९५९, पृष्ठ २६४

Registration. No. RJ-2712

हमारे यहाँ प्राप्त प्रकाशन *

मोक्षशास्त्र	१२-००
समयसार	१२-००
समयसार पद्यानुवाद	०-७०
समयसार कलश टीका	६-००
प्रवचनसार	१२-००
पंचास्तिकाय	७-५०
नियमसार	५-५०
नियमसार पद्यानुवाद	०-४०
अष्टपाहुड़	१०-००
समयसार नाटक	७-५०
समयसार प्रवचन भाग १	६-००
समयसार प्रवचन भाग २	प्रेस में
समयसार प्रवचन भाग ३	५-००
समयसार प्रवचन भाग ४	७-००
आत्मावलोकन	३-००
श्रावकधर्म प्रकाश	३-५०
द्रव्यसंग्रह	१-५०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-४०
प्रवचन परमागम	२-५०
धर्म की क्रिया	२-००
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग १	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग २	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग ३	१-५०
तत्त्वज्ञान तरंगिणी	५-००
अलिंग-ग्रहण प्रवचन	१-६०
वीतराग-विज्ञान भाग ३ (छहढाला पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)	१-००
बालपोथी भाग १	०-६०
बालपोथी भाग २	प्रेस में
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	४-००
बालबोध पाठमाला भाग १	०-५०
बालबोध पाठमाला भाग २	०-७०
बालबोध पाठमाला भाग ३	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग १	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग २	१-००
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग ३	१-००
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १	१-२५
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २	१-२५
जयपुर (खानियाँ) तत्त्वचर्चा भाग १ व २	३०-००
मोक्षमार्गप्रकाशक	प्रेस में

पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व		१०-००
तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ		५-००
" " (पॉकेट बुक साइज में हिन्दी में)		२-००
मैं कौन हूँ ?		१-००
तीर्थंकर भगवान महावीर		०-४०
वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर		०-२५
अपने को पहचानिए		०-५०
अर्चना (पूजा संग्रह)		०-४०
मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ (कैलेंडर)		०-५०
पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य		०-६५
कविवर बनारसीदास : जीवन और साहित्य		०-३०
सत्तास्वरूप		१-७०
सुंदरलेख बालबोध पाठमाला भाग १		प्रेस में
अनेकांत और स्याद्वाद		०-३५
युगपुरुष श्री कानजीस्वामी		१-००
वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका		३-००
सत्य की खोज (भाग १)		२-००
आचार्य अमृतचंद्र और उनका पुरुषार्थसिद्धयुपाय	साधारण :	२-००
	सजिल्द :	३-००
धर्म के दशलक्षण	साधारण :	४-००
	सजिल्द :	५-००

Licence No.
P. P. 16-S.S.P. Jaipur City Dn.
Licensed to Post
Without Pre-Payment

If undelivered please return to :
प्रबन्ध-संपादक, आत्मधर्म
ए-४, टोडरमल स्मारक भवन, बापूनगर
जयपुर ३०२००४